ारत रमणी रत्न



प्रकाशक—आकाशवाणी पुस्तकालय लाहौर ।



भारत रमणी रत्न



लेखक—

देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी।



प्रथमवार २०००] १९२५ [मूल्य ||।=)

प्रकाशक—
आकाशवाणी पुस्तकालय,
मोहनलाल रोड, लाहौर।

मुद्रक—
बाबू जगतनारायण बी.
विरजानंद प्रेस, लाहौ

विषय-सूची ।



—:o—

प्राक्कथन



आज से दो वर्ष पहिले जब यह पुस्तक "देश पूजा में आत्म बलिदान" के नाम से सरस्वती पुस्तकालय ने छपवाई थी तो भाई जी का विचार इसे नये रूप में जनता के सम्मुख रखने का बिलकुल न था। परन्तु उपरोक्त पुस्तक का पहला संस्करण कुछ ही महीनों में समाप्त होगया और जब दूसरी बार छपवाने की जरूरत मालूम हुई तो भाई जी ने पुस्तक का पुनरालोचन करना उचित समझा। उन का विचार केवल भाषा की त्रुटियों को दूर करके सर्वसाधारण के लाभार्थ पुस्तक को सरल और सुपाठ्य बनाने का था। परन्तु इन त्रुटियों को दूर करते हुए उन्होंने अपनी पहली पुस्तक में बहुत कुछ बढा दिया और अब यह पुस्तक नये आकार में नये नाम से "आकाशवाणी पुस्तकालय" की ओर से छपाकर हिन्दी जनता के आगे उपस्थित की जाती है। चूंकि परिवर्तन, परिवर्द्धन और परिशोधन से इस पुस्तक का विषय बहुत कुछ बदल गया अतः नाम बदलने की भी जरूरत पडी। भाई जी जहा तक हो सकता है इसे स्त्रियों-

योगी पुस्तक बनाना चाहते हैं। वास्तव में अन्यान्य देश-
तिहास संबन्धी विषयों को छोड कर, इस पुस्तक का
ाधिकतर भाग भारतीय नारियों के कारनामों के वर्णन से
ी भरा हुआ है।

हमें आशा है कि हिन्दी-हितैषी भाई इस पुस्तक को
र्व प्रिय बनाने और भाई जी के उद्देश्य को सफल बनाने
 हमारी सहायता करेंगे।

प्रकाशक।



भारत रमणी रत्न



शकुन्तला।





हमारे प्यारे देश भारतवर्ष का नाम राजा भरत से हुआ है। राजा भरत का गौरव उस की माता शकुन्तला के कारण है। यह एक अद्वितीय महिला थी, जिस का नाम कवि-कुलभूषण कालिदास ने "शकुन्तला-नाटक" रचकर अमर कर दिया है। शकुन्तला एक ऋषि की कन्या थी, जो वन में रहते थे। जब वह अपने पूर्ण यौवन में थी तब एक दिन राजा दुष्यन्त शिकार खेलने उधर आ निकले। ऋषि-आश्रम फूलदार वृक्षों से सुसज्जित था। उसे सुन्दर और रमणीक देख कर राजा उस की ओर चले। शकुन्तला बाहर निकली। शकुन्तला को देखकर राजा उस पर मोहित हो गये, और विवाह की याचना की। राजा को यौवन सम्पन्न देख शकुन्तला विवाह पर राजी हो गई। वहां थोड़ी देर ठहर कर राजा दुष्यन्त नगर को लौटे। जब ऋषि आए तब शकुन्तला ने उन्हें सब समाचार सुनाया। ऋषि बहुत प्रसन्न हुए और शकुन्तला का दुष्यन्त से विवाह कर दिया।

शकुन्तला के हां भरत पैदा हुआ, जिस ने अपनी किशोर अवस्था उसी आश्रम में गुजारी। भरत जब बड़ा हो गया

तब शकुन्तला उसे दुष्यन्त की राजधानी में ले गई। राजा के दरबार में उस ने कहा–'हे राजन्, यह तुम्हारा पुत्र अब जवान हो गया है, इसे सम्भालो और अपना उत्तराधिकारी बनाओ!' राजा ने उत्तर दिया—'न मैं तुम्हें पहचानता हूँ और न इसे जानता हूँ।' यह उत्तर सुन कर शकुन्तला की आँखों में खून उतर आया। उस ने याद दिलाई कि कई वर्ष हुए एक बार तुम वन में ऋषि–आश्रम पर गए थे और मुझ से विवाह का प्रण किया था। राजा ने जवाब दिया—'मुझे कुछ स्मरण नहीं।' शकुन्तला की क्रोधाग्नि भड़क उठी। वह बोली—'राजन्, तुम पाप करते हो! क्षत्रिय हो कर भी तुम गिर गये हो।' वह वापस लौटने को थी कि इतने में आकाशवाणी हुई—'शकुन्तला सच्ची है। हे दुष्यन्त, तू इसे ग्रहण कर!' दुष्यन्त ने उठकर उसे अपने गले लगा लिया और कहा—शकुन्तला, मैंने जान बूझ कर ऐसा किया है। यदि जैसे तुम आई थी वैसे ही मैं अपने महल में तुम्हें प्रवेश करने देता तो न मालूम ये दरबारी मेरी बाबत क्या क्या बातें करते और प्रजा कुछ का कुछ कहती। अब इन सब ने देख लिया है और साक्षी दी है। अब तुम मेरी प्राणेश्वरी हो और भारतराज्य की गद्दी की स्वामिनी हो।

—— o ——

सावित्री ।



मारे शास्त्रों मे पतिव्रत-धर्म की बड़ी महिमा कही गई है । महाभारत में एक योगी की कथा आती है । एक बार वह एक वृक्ष के नीचे खड़ा था । ऊपर से एक पक्षी ने उस पर बीट कर दी । योगी ने क्रोध से ऊपर देखा । उस की आँखों के तेज से पक्षी जलकर नीचे आ पड़ा । उस के बाद वही योगी भिक्षा के लिए एक गाँव में गया । एक गृहस्थ के घर पर आवाज दी । गृहपत्नी अपने बीमार पति की सेवा कर रही थी इसलिए साधु के लिए भोजन लाने मे उसे जरा देरी हो गई । स्त्री जब द्वार पर आई तब योगी क्रोध से उस की ओर देखने लगा । सती बोली—'महाराज, यहा कोई चील कव्वा नहीं है, जो जल जायगा । मैं ता अपने पति की सेवा में लग रही थी । देरी के लिए क्षमा करो ।' यह पति सेवा का फल है ।

युधिष्ठिर ने मारकण्डेय ऋषि से प्रश्न किया, 'भगवन्, क्या द्रौपदी को छोड़ और भी कोई स्त्री हुई है, जिस में इस से बढ़ कर पतिव्रत धर्म था ?' ऋषि ने उत्तर दिया—'हा, वह सावित्री हुई है । सुनो, उस का वृत्तात इस प्रकार है— दक्षिण के एक प्रदेश मद्र में अश्वपति एक राजा हुआ है । सावित्री उस की पुत्री थी । वह बड़ी रूपवती थी । जब वह

युवावस्था को प्राप्त हुई तब राजा उसे संग लेकर वर की खोज में निकला । फिरते फिराते वे एक वन में पहुचे । अश्व-पति ने अपना रथ राजा देवव्रत सैन की कुटि पर जा खड़ा किया । तब राजा भी वनों में तपस्या करते थे । देवव्रत के पुत्र सत्यवान को देखकर सावित्री ने उसे अपना वर चुन लिया । यह निश्चय कर के वे लौट आए । घर पर जाकर राजा ने ज्योतिषियों से वर की बाबत पूछा । ज्योतिषियों ने कहा—' राजन् और तो सब ठीक है, किन्तु शोक से कहना पड़ता है कि वर एक बरस के बाद मर जायगा ' । पिता अपनी पुत्री को समझाने लगा कि तू अपना संकल्प बदल दे । सावित्री ने उत्तर दिया, बस एक बार जिस से प्रेम कर लिया पिता उसे बदलना कैसा ? विवाह हो गया । सावित्री वन में जाकर पति के साथ एक कुटी में रहने लगी । वह प्रति दिन अपने पति की आयु के शेष दिन गिनती थी । जिस दिन आयु पूरी हो गई और सत्यवान बाहर जाने लगा तब सावित्री भी अपने प्राण-प्रिय के साथ हो ली । जंगल में जाकर सत्यवान् उस से कहने लगा कि मेरे सिर में पीड़ा हो रही है । सावित्री अपने पति का सिर गोद में लेकर बैठ गई । सत्यवान् बेहोश हो गया । यमदूत आए कि उसे उठाकर ले जाय, पर सावित्री का तप देख कर डर गए । किसी को आगे बढ़ने का साहस न हुआ । वे वापस यमराज के पास गए और उस से कहा कि हम सावित्री के पास नहीं जा

सकते । यमराज आप आया । वह भी पास न जा सका । उस ने दूर से सावित्री को बताया कि तेरा पति अब मर चुका है, इस लिए तू उसे छोड़ दे । सावित्री ने छोड़ दिया । यमराज उसे लेकर चल पड़ा । सावित्री उस के साथ हो ली । यमराज घबराया । उस ने सावित्री को समझाना शुरू किया कि वापस चली जाओ, यदि कोई वर माँगना हो तो कहो । सावित्री वर माँगती रही । पर उस ने यमराज का साथ न छोड़ा । यमराज ने कहा—'तुम क्यों पीछे आती हो ? इस से क्या लाभ होगा ?' सावित्री बोली— मैं सत्यवान् को छोड़ कर किधर जाऊँगी ? जब स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी होती है वह पति से पृथक् कैसे हो सकती है ? इस प्रकार यमराज और सावित्री में बहुत से प्रश्नोत्तर होते रहे । अन्त में यमराज बड़ा प्रसन्न हुआ और उस ने सत्यवान् की आयु बढ़ा कर उसे सावित्री के हवाले कर दिया । 'सावित्री का पातिव्रत सब से बड़ा है ।



सुलभा ।



हाभारत के शान्तिपर्व में आता है कि युधिष्ठर भीष्म से पूछते हैं कि महाराज, गृहस्थाश्रम के धर्म को न छोड़ कर किस ने अब तक मोक्ष प्राप्त किया है । उस का वृतान्त मुझ से कहिये । भीष्म उत्तर देते हैं—प्राचीन

समय में जीवनमुक्त जनक नामक मिथिला का राजा था, जो वेद तथा ब्रह्म विद्या का ज्ञाता था । राज पाट में बहुत प्रवृत्त रहते हुए भी वह सच्चा वैरागी था । वह इन्द्रिय-दमन करके राज्य करता था । उस सत्ययुग मे योग की सब क्रियाएं और साधन जानने वाली एक सन्यासिन स्त्री सुलभा थी । उस ने कुछ महात्माओं से राजा जनक की प्रशंसा सुनी थी । इस लिए उस की परीक्षा के लिए उस में जनक से मिलने की प्रवल इच्छा हुई । उस ने सन्यासिन के वस्त्र उतार कर एक सुन्दरी का रूप धारण किया । इस वेष में वह राजदरबार में पहुंची ।

राजा ने उसे कोमलवदना सुन्दरी जान कर सवाल किया कि तू कौन है और कहा से आई है । तत्पश्चात् जनक ने योग्य आसन पर बिठला कर उसे भोजन करवाया । जनक के आतिथ्य से प्रसन्न हो सुलभा ने उस से पूछा कि वह किस तरह राजकार्य में निमग्न होता हुआ भी वैरागी है । जनक महाराज बोले— 'हे देवी, यद्यपि बिना बताए दूसरे की विद्या, जाति और आयु का ज्ञान नहीं हो सकता, तो भी मैं तुम्हारे सवाल का जवाब देता हूँ, तुम ध्यान से सुनो ! यहा पर दूसरा कोई नहीं जो तुम से वैराग्य के विषय पर बातचीत कर सके । मैं परम बुद्धिमान् पचशाखा का शिष्य हू । पचशाखा पराशरवंश के सन्यासी हैं । शास्त्रानुसार पिछला चातुर्मास्य उन्होंने मेरे घर पर व्यतीत किया था

तब उन्हों ने मेरे सब संशय दूर कर दिए। मैं योग और सांख्य का पारंगत हूं और मोक्ष का साधन जानता हूं। इतनी शिक्षा देते हुए उन ने मुझे राज्य-त्याग की आज्ञा नहीं दी। योग से ज्ञान होता है। ज्ञान के द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है। तब मनुष्य सुख दुःख से मुक्त हो जाता है। इस सांसारिक जीवन से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। जिस प्रकार गीली ज़मीन में बोया हुआ बीज जड़ पकड़ लेता है, वैसे ही मानवी कर्म की उत्पत्ति है। जैसे भूने हुए बीज से पौधा नहीं उगता उसी प्रकार ज्ञान के होने पर जन्म का भेद नहीं रहता। ज्ञान के कारण इन्द्रियों के विषयों में मेरा प्रेम नहीं रहा। अपनी स्त्री के लिए मुझ में विशेष प्रीति नहीं और शत्रु के लिए विशेष वैरभाव नहीं। दोनों से परे हूँ। ईर्ष्या द्वेष से रहित हूँ। मेरी एक बाँह पर चन्दन लगवाने वाला और दूसरा पर चोट करने वाला दोनों मेरे लिए एकसमान हैं। मिट्टी के ढेले और सोने की ईंट को मैं एक आँख से देखता हूं। राज्य कार्य करते हुए भी मैं रागद्वेष से रहित हूँ। इसी कारण साधुजन मेरा आदर करते हैं। यदि मनुष्य घर पर रहकर यम-नियम का पालन करे तो वह सन्यासी के बराबर है। यदि सन्यासी के मन में इच्छा, द्वेष, मद, प्रमाद आदि मौजूद हैं तो वह गृहस्थ है। अगर किसी ने इन विषयों को पार कर लिया है तो वह साधु है। मोक्ष न तख्त में है न राज-मुकुट में, न दरिद्रता ही में है

और न सम्पत्ति में। राजा होता हुआ भी मनुष्य अपने आदर्श को सन्मुख रख सकता है। गेरुए वस्त्र पहनना, सिर मुडवाना और कमण्डलु हाथ में रखना सब बाहरी दिखावा है, इस के द्वारा मोक्ष नहीं मिलता। इस के होने पर भी मोक्ष-प्राप्ति के लिए ज्ञान की जरूरत रहती है। यद्यपि ससार की आँखों में मैं गृहस्थ के सभी धर्म कर्म करता हूँ, परन्तु जिसे सर्वसाधारण बन्धन समझते हैं, उसे मैं ने वैराग्य की तलवार से काट दिया है।

इतना कहकर जनक ने सुलभा से फिर पूछा—"तुम कौन हो? क्या काम करती हो? कहा से आई हो? यहा से किधर जाओगी? तूने मेरे हृदय—मन्दिर में किस द्वार से प्रवेश किया है? यदि तू मेरे गोत्र से है तो यह बड़ा बुरा है। यदि तुम्हारा पति जिन्दा है तो यह और भी बुरा है। मुझ से मत छू! जो कुछ तू ने कहा है मन को कलुषित करने वाला है। इस से तेरे चित्त की शान्ति जाती रहेगी। अपना बड़प्पन दिखाने की इच्छा के होने से तुम में मानिनी स्त्रियों के चिह्न आगए हैं। यहा तू मुझे ही जीतने नहीं आई प्रत्युत समस्त ब्राह्मण-मण्डल को परास्त करना चाहती है। अच्छा, यह तो बताओ, कि तू यहा अपनी इच्छा से आई है या किसी राजा ने तुझे भेजा है। तेरे लिए उचित नहीं जो तू मुझ से अपना मनोरथ छिपाती है। तू मेरे राजमहल में कैसे आई है?"

यद्यपि राजा ने उसे कई बार अनुचित शब्द कहे, तो भी सुलमा को कुछ कष्ट न हुआ। अपने उत्तर में उस ने पहिले यह कहा कि मनुष्य की वाणी मीठी और सरल होनी चाहिए। मनुष्य को चाहिए कि बोलते समय वह अच्छे शब्दों का प्रयोग करे। तत्पश्चात् उस ने जनक से ऐसा कहा—"हे राजन्, मन को एकाग्र कर के मेरे वचन सुनो! जिस प्रकार सब्ज लकड़ी पार्थिव और जलीय परमाणुओं से बनी है और वे परमाणु गतिवान होते हैं वैसे ही सब देहधारी जीवों का अस्तित्व है। किन्तु निर्जीव सूखी लकड़ी स्वयं हरकत नहीं कर सकती। इन्द्रियां अपने कर्मों से पृथक हैं। कोई इन्द्रिय अपने आप को या दूसरे को नहीं जानती। आंख अपने आप नहीं देख सकती। कान अपने आप को सुन नहीं सकता। यदि ये परस्पर मिल कर रहें तो भी अपने आप को नहीं पहचान सकते, जैसे मिट्टी और पानी एक साथ रहते हुए भी अपने आप को नहीं पहचान सकते। अपना धर्म पालन करने के लिये उन्हें किसी और चीज की जरूरत रहती है। दृष्टि के लिये आधार, आकार और प्रकाश चाहिए। शरीर में एक भिन्न वस्तु मन है, जिस के कर्म भी भिन्न हैं। इसी की सहायता से इस बात का ज्ञान होता है कि कौन जीवित है और कौन मृत है। पांच कर्मेन्द्रियां हैं, पांच ही ज्ञानेन्द्रियां हैं, ग्यारहवां मन और बारहवीं बुद्धि है। सन्देह का निर्णय बुद्धि करती है। तेरहवां तत्व आत्मा और चौदहवां आशा है। वासना

पन्द्रहवा है। इस से सारी सृष्टि बँधी है। सोलहवा अविद्या है शीत, उष्ण, सुख दु ख, हानि लाभ, पाप पुण्य आदि द्वन्द्व हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि अव्यक्त प्रकृति इन का कारण है। कणाद परमाणु को कारण मानते हैं। हे राजन्, आप, मैं और अन्य सभी देहधारी जीव इसी प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं। प्रतिक्षण शरीर में परिवर्तन होता रहता है। इसी कारण मनुष्य बाल से युवा और युवा से वृद्ध होता है। यह परिवर्तन किसी को प्रतीत नहीं होता। दीये की लौ की तरह परमाणु की उत्पत्ति, उस में परिवर्तन और उस के विनाश का ज्ञान किसी को नहीं होता। जब सब के शरीर की यही दशा है तब कौन इस का उत्तर दे सकता है कि तू कौन है, कहा से आया है और कहा जायगा?

जीव का उस के देह से क्या सम्बन्ध है? जिस प्रकार चुम्बक में लोहे को आकर्षित करने की शक्ति है, या दो लकड़ी के टुकड़ों को रगड़ने से अग्नि उत्पन्न होती है उसी प्रकार इन तत्त्वों के मेल से जीव पैदा होते हैं। आप अपने शरीर को अपने शरीर में और अपनी आत्मा को अपनी आत्मा में ही देखते हैं। क्या आप अपनी आत्मा और शरीर को किसी दूसरे की आत्मा और शरीर में देखते हैं? यदि यह सच है कि आप दूसरों को आत्मवत देखते हैं, तो मुझ से क्यों पूछते हो कि तू कौन है और कहा से आई है? क्या यह सच है कि आप द्वैतभाव से मुक्त हो गए हैं?"

सुलभा की मोक्ष की व्याख्या अति सूक्ष्म थी। राजा जनक को समझाते हुए उस ने कहा कि मैं ससार के बन्धनों को चार मागो—नींद, भोग, भोजन, वेष—मे निभक्त करती हूँ। तुम मोक्ष के अधिकारी होते हुए भी इन में फसे हो। अन्त में उस ने अपना परिचय देते हुए कहा—मैं ने आप की तरह उच्च कुल मे जन्म नहीं लिया। वृद्धमान नामक एक राजर्षि हुए हैं। मैं उन्हीं के वश में से हू। मेरा नाम सुलभा है। उस वश में जन्म लेने से मुझ को ऐसा विचार हुआ कि मेरे योग्य ससार में कोई पति नहीं। मुझे वैराग्य की शिक्षा दी गई। मै ससार में रहती हुई भी वैरागिनी हू। मुझ में कपट नहीं। मैं अपनी प्रतिज्ञा में दृढ हू। मैं देखने आई थी कि तुम्हे मोक्ष प्राप्त है या नहीं। यहा मैं इसलिए नहीं आई कि मेरा मान हो और तेरा अपमान। जिस प्रकार एक सन्यासी रात भर के लिए एक स्थान पर रहता है, इसी तरह तेरे नगर में आज की रात रह कर मै कल प्रस्ताव कर जाऊगी।

सुलभा के चरित्र में हमें दो बातें बहुत आकर्षित करती हैं—एक उस की विद्वत्ता दूसरा तप। जनक के सामने जिस तरह उसने शास्त्रों के गहन विषय पर प्रश्नोत्तर किए, उस से सुलभा की विद्वत्ता प्रकट होती है। उसका आजन्म अविवाहित रहना उस के दृढ़ व्रत और तप का सूचक है।

——*——

विदुला।



कृष्ण जी ने युद्ध घोषणा करने से पहले एक बार स्वयं कौरवों के पास जाने का निश्चय किया। इस पर युधिष्ठिर ने उन से कहा—'वहां जाने से कुछ नहीं बनेगा; दुर्योधन आप का कहना कभी नहीं मानेगा। कृष्ण बोले, "मैं सब जानता हूँ, मुझे समस्त संसार मिल कर भी कोई हानि नहीं पहुंचा सकता। मैं अपने क्रोध से सब का नाश कर सकता हूँ। मेरा जाना व्यर्थ न होगा। मेरे जाने से इतना तो अवश्य होगा कि कुल-विनाश का कलंक दुर्योधन के माथे पर लगेगा' इस के बाद भगवान् चले गये। धृतराष्ट्र के दरबार में, जहां द्रोणाचार्य आदि सभी विद्यमान थे जा पहुंचे। धृतराष्ट्र को सम्बोधित कर के उन्हों ने कहा—'राजन्, मैं इस भाव से तुम्हारे हां आया हूँ कि दुर्योधन और पाण्डवों में मेल होजाय और नरमेध की नौबत न आए। दूसरों को दुःख देकर सुखी होना अच्छा नहीं। आप अपने पुत्रों को समझायें, मैं पाण्डवों से समझ लूँगा। उन से प्रेमपूर्वक व्यवहार करने में हम सब की भलाई है। इस समय अनेकों [illegible] राजा उन के साथ हैं, और फिर एक से एक बढ़कर योधा हैं, जो उन के लिए लड़ने को तैयार हैं। युधिष्ठिर ने समझा बुझा कर रोक रक्खा है। आप भी संधि के लिए तैयार हो जाइए। आप जानते हैं कि युधिष्ठिर का व्यवहार आप

से कैसा है। पाण्डवों का राज्य छीना गया, द्रौपदी का अपमान किया गया, और वे सब वन वन में फिरते रहे, तो भी धर्म पथ से नहीं हटे। आप भी सोच विचार कर ऐसा काम करें जिस से कुल का नाश न हो।"

सब ने इन बचनों को पसन्द किया और उस के समर्थन मे धृतराष्ट्र को धर्म पर चलने की प्रेरणा की। धृतराष्ट्र बोले—'मैं भी यही चाहता हूँ। परन्तु क्या करूँ, मेरे बस में कुछ नहीं। मैं ने बहुत यत्न किया है पर दुर्योधन किसी तरह नहीं मानता' कृष्ण ने सब वृत्तात कुती को जा सुनाया और उस से सम्मति पूछी। कुती बोली—'युधिष्ठिर से कहो कि अब तुम्हारा धर्म कहा है। तुम शायद धर्म के उल्टे अर्थ समझ रहे हो। वेद में ऐसे धर्म की महिमा नहीं कही गई। धर्म वहाँ रहता है जहाँ बुद्धि और ज्ञान से काम किया जाता है। क्षत्रियो को चाहिए कि वे अपने बाहु-बल पर भरोसा रक्खें। मैं विदुला की कथा कहता हूँ। तुम इसे युधिष्ठिर को जा सुनाना—शाश्वत वश के क्षत्रियों ने प्रण किया हुआ था कि सिर जाय तो जाय पर शत्रु को जीते बिना रणभूमि से नहीं लौटेंगे। इस वश में विदुला का जन्म हुआ। इस महिला में अपने कुल के सभी गुण—उत्साह, वीरता, गम्भीरता—थे। राजा सुवीर के साथ इस का ब्याह हुआ। सुवीर का राज्य मारवाड़ के दक्षिण में था। पिता के मर जाने पर

विदुला का पुत्र सञ्जय गद्दी पर बैठा । यह उत्साह हीन, अल्पबुद्धि और राजनीति को न जानता था यह देख सिंधु के राजा ने उस पर चढ़ाई की। परास्त हो सजय भाग निकला और एक पर्वत की शरण जा ली। यह बात जब विदुला ने सुनी तब क्रोध से उस की आखे लाल हो गई। वह सजय के पास पहुची और उसे सम्बोधित करके इस प्रकार कहा- "हे शत्रुओं को प्रसन्न करने वाले सजय, तू मेरा पुत्र नहीं है। मेरे पेट से अग्नि उत्पन्न होनी चाहिए थी, ताकि शत्रुओं का जलाकर भस्म कर देती । तू किस के वीर्य से जन्मा है ? न तू पिता का है न माता का ! तुझ मे क्रोध नहीं, अग्नि नहीं ! तेरी गणना पुरुषों में कौन करेगा ? क्या तू नपुंसक है, जो युद्ध क्षेत्र से भाग आया है ? तुम म यह भीरुता कैसी ? यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो अपने भार को स्वय सभाल, अपनी आत्मा को मलिन मत कर ! क्षत्रिय-पुत्र को ऐश्वर्य की इच्छा होती है । वह किसी के अधीन नहीं रहता, वह दूसरों को अपने अधीन करना चाहता है। कायरों की तरह पीछे रहना उसे पसन्द नहीं होता, यशस्वियों की तरह वह सब से पहली श्रेणी में होता है। तुझे चाहिए कि तू आग की तरह भड़क उठे और बिजली बनकर शत्रुओं पर कड़के। सिसक सिसक कर मरना नीचता है । तेरे जैसा कायर और नपुसक क्या करेगा ! जिस में साहस नहीं वह पुरुष नहीं । जिस

में बल नहीं वह निर्लज्ज न पुरुष है न स्त्री। उस से न मित्रों को सहायता न प्रजा को सुख मिलता है। उस के द्वारा न माता की छाती ठंढा होगी न पिता का नाम जीवित रहेगा। यह देश निकाला और यह विपत् किसे अच्छे लगते हैं? संजय, तू पुरुष बन, स्त्रियों के वस्त्र मत पहन! क्या तू मुझे स्त्रियों में लज्जित करेगा? उठ, खड्ग हाथ में ले और शत्रुओं का संहार कर!" संजय ने माता के शब्द सुने और बोला—"माता, इस लोक में तुझे क्या सुख मिलेगा यदि तेरा पुत्र संसार में न हुआ? तब तेरा जीवन किस काम आवेगा?" विदुला ने उत्तर दिया—हे पुत्र, मरना जीना तो बना ही है, इसे कोई रोक नहीं सकता। जो रणभूमि में मरता है उसे स्वर्ग मिलता है। जो घर में भागता है, नरक का भागी बनता है। क्षत्रिय जब तक युद्ध में लड़कर अपनी वीरता और शूरता का परिचय नहीं देता तब तक माता पिता का ऋणी रहता है। हे वीर, तू ऐसा बली बन कि ब्राह्मण भिक्षु तेरा आश्रय लें, तू क्यों किसी का आश्रय ले? जो अपने बहुबल पर घमण्ड करता हुआ संसार में विचरता है वह लोक और परलोक दोनों में यश पाता है। संजय, माता गर्व करती है यदि उस का पुत्र सिंह के सामने अपनी आँख नहीं झपकता। यह मान लिया कि सिंध के राजा के पास सेना बहुत है, किन्तु तुम्हें यह भी मालूम हो कि अपने देश में आए शत्रु को अकेला एक ही क्षत्रिय

वीर कार सकता है। इस लिए तू उठ, तलवार को हाथ में ले और अपने वीरों को एकत्रित करके शत्रु का सामना कर ! कायरों की तरह मौत से मत डर !

संजय ने कहा—'हे कलहप्रिय माता, तुझ लड़ने भिड़ने की ही सूझती है ! तेरा हृदय तो पत्थर का बना है ! तू समझती है कि मैं तेरा जाया पुत्र ही नहीं और तू मेरी माता नहीं। यदि मैं मारा गया तो तू राज्य लेकर क्या करेगी ?' विदुला ने उत्तर दिया—'मुझे राजपाट का कुछ ख्याल नहीं। ऐसी बातें कह कर तू कुल को बदनाम कराने पर उतारू मालूम होता है। क्या तेरे पूर्वपुरुष कभी इस रास्ते पर नहीं चले ! क्षत्रिय इस लिए उत्पन्न होता है कि सब की रक्षा करे। क्षत्रिय ही के बल पर ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र तीनों आश्रित हैं। क्षत्रिय वह अग्नि है, जिसे देख वन के शेर बघेले पास आने का साहस नहीं करते। यदि यह अग्नि शान्त हो जाय तो फिर देश की क्या अवस्था होगी ? इस लिए हे वीर, जाओ और शत्रुदल को मार भगाओ, तू उन की बहुसंख्या का कुछ ख्याल न कर !'

संजय ने कहा—'माता, तू क्रोध न कर, मैं तेरी आज्ञा पालन करता हूँ !' तिस पर आशीर्वाद देते हुए माता बोली—संजय, मेरा हृदय अब शान्त हुआ है ! मैं तुम पर मान करूँगी, किन्तु उस समय जब द्विषिन्धलरेश का संहार करके तू वापस लौटेगा और सभी तेरी प्रशंसा करेंगे !'

संजय ने पूछा, 'माता, न मेरे पास धन है न सेना, ऐसी अवस्था में मै विजयी कैसे हूँगा? इसी कारण तो मैंने पहले राजपाट को तिलांजली दी थी!' माता बोली, 'यदि कोई यह समझता है कि क्रोध से उसका काम बन जायगा तो वह मूर्ख है। मनुष्य को साहस और उद्योग से सब काम करने चाहिएँ। आगे फल तो ईश्वर के हाथ में होता है। जिस प्रकार सूर्य पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण सभी ओर अपने प्रकाश का विस्तार करता है, इसी प्रकार तू भी अपना यश फैला। तेरे राज्य में ऐसे मनुष्य हैं, जिन में देशाभिमान है, और इसी कारण जो शत्रु से घृणा करते हैं। उन्हें तू अपने झंडे के नीचे ला। लालचियों को धन से संतुष्ट कर। शत्रु से पराजित होने के कारण जिन में ईर्ष्या और द्वेष की अग्नि दहक रही है, उन से सहानुभूति प्रकट कर, वे तेरा साथ देंगे। जैसे मैं ने तुम्हें कटु वचन कहकर रणभूमि के लिए तैयार किया है, ऐसे ही तू भी मोह के जाल में फँसे हुए वीरों को उत्तेजित कर। हर एक का स्वभाव पहचान कर उस के साथ उचित व्यवहार कर। कुछ ही दिन में तेरे पास अगणित सेना हो जायगी। तेरे सत्य की देर है कि तेरी इच्छा पूर्ण होगी, कि हज़ारों सैनिक सुसज्जित हो शत्रु-पक्ष में आतंक पैदा कर देंगे। दुश्मन तेरी तैयारी ही को देख कर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जायगा। आपत्काल में राजा कभी नहीं घबराता। राजा का काम तो हतोत्साह सेना, निराश प्रजा और संकल्पहीन

मंत्रियों को कर्म-क्षेत्र के लिए तैयार करना है। कई एक विश्वासघात कर के या घबराकर शत्रुओं से जा मिलेंगे। उन पर अपनी आँख रख। तुम्हारा प्रेम समयोचित और मर्य्यादा के भीतर होना चाहिए। नहीं तो धोखा खाओगे। हैरान मत हो। अपने दुःख से दूसरों को दुःखी न कर। तू अपने मन को दृढ़ रख, वे तेरा साथ कभी न छोड़ेंगे। उठ, धीरज धर। मेरे पास खजाना है, वह मैं तुझे ही दूँगी। हीरे पन्ने की तरह चमकता हुआ तू शत्रु-सेना का संहार कर। अपने पिता का नाम उज्ज्वल कर।'

यह सदुपदेश सुन संजय को ढाढस बँध गई। उसने कहा—'माता, तू मेरी सच्ची परामर्शदात्री है। मैं अबतक डरा हुआ था। तेरी बातों ने मेरे सोये दिल को जगा दिया है। मैं जाता हूँ, लोहे से लोहा बजाता हूँ। या शत्रु दलको काट दूँगा या आप प्राण दे दूँगा।' इसके पश्चात् संजय ने पर्वत पर अपना झंडा गाड़ दिया। सहस्रों सैनिक इकट्ठे हो गये। उन को सम्बोधित कर के संजय ने कहा—'वीरो, अपमान और दासता के जीवन से मृत्यु सदा ही अच्छी होती है। जीते जी अपने देश को शत्रु के हवाले करना कायरों का काम है। मैं तुम्हारे लिये आत्म बलिदान करने चला हूँ। कहो तुम्हारी क्या इच्छा है?' सब ने एकस्वर होकर कहा, 'हम तैयार हैं।' राजा पुलकित होकर बोला—'साधु वीरो! साधु!! जहाँ हिम्मत है वहाँ जय है। आओ, हम सब अपने देश को

शत्रु से बचायें !' इसी के पश्चात् अर्ल मर्याद की तरह वे सब शत्रु पर उमड़ पड़े। दुश्मनों के पाँव उखड़ गये। संजय ने उन्हें मार भगाया। पराये का सब माल-असबाब उसके हाथ आया। विदुला यह मंगल समाचार सुनकर स्वयं रणक्षेत्र में आई। उस ने संजय का मस्तक चूमा और कहा — 'पुत्र, पिता का सच्चा पुत्र, विदुला की आँख का तारा, तू ही राज्य का अधिकारी है।'



दमयन्ती।

एक दिन वन में बैठे वृहदस्व ऋषि युधिष्ठिर को एक कथा सुनाने लगे। निषाद देश में वीरसेन नामक एक राजा था। उस के पुत्र नल में सच्चाई, वीरता, बुद्धि आदि सभी गुण थे। परन्तु उस में एक बुरी आदत थी, वह जुआ थी। विदर्भ देश के राजा भीम के घर तीन लड़कियों के बाद चौथी लड़की दमयन्ती हुई। जब नल और दमयन्ती युवावस्था को प्राप्त हुए और दोनों ने एक दूसरे के सौन्दर्य की बातें सुनीं तब दोनों में पारस्परिक मेल की इच्छा हुई। दमयन्ती का स्वयंवर रचा गया। उस समय दमयन्ती ने जयमाल राजा नल के गले में डाली। दोनों का विवाह हो गया, जिस से दो रूपवान् बालक हुये।

जूए की लत के कारण एक बार नल अपने भाई
के साथ लगातार कई दिन तक बैठा बाजियाँ
रहा। दमयन्ती उसे समझाती किन्तु उस ने एक न
अन्त में वह राजपाट सब कुछ हार गया। और
भाई ने गद्दी पर कब्ज़ा कर लिया। दमयन्ती ने
लड़की को अपने मैके भेज दिया। क्रोध और दु
व्याकुल हो दोनों ने अपना देश त्याग दिया। मार्ग में
को बहुत सख्त भूख लगी। अचानक उसको कुछ
दिखाई दिये। उन्हें पकड़ने के लिये उसने उन पर अपनी
डाल दी। पक्षी उसे उड़ा कर ले गये। यह दशा देख नल
रोया। उसने अपनी पत्नी से कहा, 'देवी तू क्यों अकारण
उठाती है। जा, अपने पिता के घर में सुखमय जीवन व्य
कर'। दमयन्ती ने कहा—'मैं आपका अभिप्राय समझती
मैं आप की दासी हूँ। स्वामी को भूखा प्यासा छोड़
कहाँ जाऊँगी? मैं अपने शरीर और प्राणों का त्याग
सकती हूँ, पर आप का साथ नहीं छोड़ सकती।' भूखे
दोनों एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। दमयन्ती थक गई
उसे नींद आ गई, और वह सो गई। विपत्ति में मनुष्य
बुद्धि विपरीत हो जाती है। नल ने समझा कि दमय
को छोड़कर यदि वह अकेला वन में चला गया तो
विवश हो विदर्भ चली जायगी। सोती दमयन्ती की
धोती फाड़कर नल चल दिया। दमयन्ती उठी। पति

पास न देख घबरा गई। डर के मारे चिल्लाने लगी। यह बैठी हुई थी कि एक साँप आया, जो उस के शरीर से लिपट गया। दैवात् एक शिकारी भी यहाँ पहुँच गया। उसने साँप का सिर मरोड़ दिया और दमयन्ती बच गई। कि तु व्याध के मन में मलिनता आ गई। उस ने सती से कहा, "तो मेरे ही घर पर रहो!" दमयन्ती ने उत्तर दिया—"मैं राजा नल को छोड़ अन्य किसी को नहीं जानती"। शिकारी पीछे पड़ गया। दमयन्ती ने उस की तलवार से उसी का काम तमाम कर दिया। भीम की पुत्री ने पति की तलाश में सब जगह गाह मारी। नल, नल चिल्लाती फिरी। पक्षियों, वृक्षों और पर्वतों से बार बार पूछती। पर उसका कुछ पता न लगा। अन्त में सौदागरों के एक समूह से उसकी भेंट हुई। यह उन के साथ होली। कुछ दिन इसी तरह गुज़र गये। रास्ते में जंगली हाथियों ने सौदागरों पर हमला किया। बहुत से सौदागर मारे गये। परन्तु दमयन्ती किसी तरह अपनी जान बचा कर भाग गई।

बाल खुले, मलिन मुख और आधी नंगी दमयन्ती एक नगर में जा पहुँची। बावली समझ कर गली कूचे के लड़के उस के पीछे लग गये। अकस्मात् यह दृश्य नगर की रानी ने भी देख लिया। उसे बड़ी दया आई। उस ने अपनी दासी को दमयन्ती के बुलाने के लिये भेजा। रानी ने दमयन्ती से उस का हाल पूछा। दमयन्ती ने कहा— मैं अपने पति

की खोज में फिर रही हूँ। उसे जुए की आदत थी। उसी से दु:खी हो वह कहीं भाग निकला है!' रानी ने दमयन्ती को अपने यहाँ रहने को कहा और साथ ही नल की तलाश करने की प्रतिज्ञा की। दमयन्ती ने उत्तर दिया—'अच्छा, मैं इन शर्तों पर यहाँ रहूँगी—किसी का झूठा न खाना पड़े, किसी पुरुष से बात न करनी पड़े और जो मेरी ओर बुरी आँख से देखे उसे सज़ा दी जाय।' रानी ने शर्तों को स्वीकार कर लिया। दमयन्ती राजकुमारी के साथ रहने लगी।

विदर्भ-नरेश ने अपने जमाई और लड़की की तलाश में सब ओर अपने आदमी दौड़ाये। इधर नल घूमता हुआ अयोध्या जा पहुँचा। अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण ने नल को अश्व-विद्या में निपुण जान उसे अपनी अश्वशाला का अध्यक्ष बना दिया। नल वहाँ रात को रोता और विलाप करता—'हाय, उसका कौन साथी होगा? उसे खाना कहाँ से मिलेगा? हा, मैं ने उसे अकेले क्यों छोड़ दिया!' उधर दमयन्ती भी रोती रहती।' राजकुमारी को उसके रोदन का पता लगा। उसने यह बात अपनी माँ से कही। विदर्भराज का छोड़ा हुआ एक खोजी सुदेव दमयन्ती के पास पहुँचा [illegible] यह जान [illegible] बड़ा दु:ख हुआ कि दमयं[illegible] न की [illegible]

कहा, 'माता, यदि तू मुझे सुखी देखना चाहती है। तो किसी न किसी तरह मेरे पति को यहाँ बुलाओ !' दुबारा दूत दौड़ाय गये। जहाँ कहीं कोई दूत जाता एक विशेष गीत गाता। बहुत देर के बाद अपने स्वामी के पास एक दूत यह समाचार लाया कि अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण का कोचवान इस गीत को सुनकर रो पड़ा था। दमयन्ती समझ गई। भीम ने अयोध्या-नरेश को खबर पहुँचाई कि मेरी पुत्री दमयन्ती कुछ दिन में दूसरा स्वयंवर रचानेवाली है और उसे अपने हाँ बुला भेजा। ऋतुपर्ण ने अपने सारथी से पूछा कि क्या तू इतने समय में मुझे विदर्भ पहुँचा देगा। नल ने उत्तर दिया, 'हाँ, पहुँचा दूँगा।' उसने राजा को रथ पर बैठाकर घोड़ों को हवा किया। जब विदर्भ पहुँचे तब उन्हें पता लगा कि यहाँ कोई स्वयंवर ही नहीं। राजा ने उन्हें एक विशेष स्थान पर ठहराया।

नल का रंग-रूप, चाल-ढाल आदि सब गुण देखने के लिए दमयन्ती ने गुप्त रीति से उसके पास अपनी दासी भेजी। दासी ने आकर कहा कि वह बड़ा संयमी है, रसोई अच्छी बनाता है, मेरे सामने उस ने सूर्य्य को ऐसे ढंग पर शीशा दिखाया कि अग्नि जलने लगी। दमयन्ती को निश्चय हो गया कि वह उसका पति ही है। दमयन्ती ने अपने दोनों बालक नल के पास भेज दिये। नल ने पहले दोनों को गोदी में लिया और फिर रोते रोते यह कहा कि मेरे भी ऐसे ही

को खोज में फिर रही हूँ। उसे जूए की आदत थी। उसी से दुःखी हो वह कहीं भाग निकला है।' रानी ने दमयन्ती को अपने हाँ रहने को कहा और साथ ही नल की तलाश करने की प्रतिज्ञा की। दमयन्ती ने उत्तर दिया—'अच्छा, मैं इन शर्तों पर यहाँ रहूँगी—किसी का झूठा न खाना पड़े, किसी पुरुष से बात न करनी पड़े और जो मेरी ओर बुरी आँख से देखे उसे सज़ा दी जाय।' रानी ने शर्तों को स्वीकार कर लिया। दमयन्ती राजकुमारी के साथ रहने लगी।

विदर्भ-नरेश ने अपने जमाई और लड़की की तलाश में सब ओर अपने आदमी दौड़ाये। इधर नल घूमता हुआ अयोध्या जा पहुँचा। अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण ने नल को अश्व-विद्या में निपुण जान उसे अपनी अश्वशाला का अध्यक्ष बना दिया। नल वहाँ रात को रोता और विलाप करता—'हाय, उसका कौन साथी होगा? उसे खाना कहाँ से मिलेगा? हा, मैं ने उसे अकेले क्यों छोड़ दिया।' उधर दमयन्ती भी रोती रहती।' राजकुमारी को उसके रोदन का पता लगा। उसने यह बात अपनी माँ से कही। विदर्भराज का छोड़ा हुआ एक खोजी सुदेव दमयन्ती के पास पहुँचा। उस से यह जान कर रानी को बड़ा दुःख हुआ कि दमयन्ती उसकी बहिन की लड़की है।

वहाँ से विदा होकर सुदेव के साथ दमयन्ती विदर्भ गई। उसे देख उस की माता बड़ी प्रसन्न हुई। दमयन्ती ने

कहा, 'माता, यदि तू मुझे सुखी देखना चाहती है। तो किसी न किसी तरह मेरे पति को यहाँ बुलाओ !' चुपारा दूत दौड़ाय गये । जहाँ कहीं कोई दूत जाता एक विशेष गीत गाता । बहुत देर के बाद अपने स्वामी के पास एक दूत यह समाचार लाया कि अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण का कोचवान इस गीत को सुनकर रो पड़ा था । दमयन्ती समझ गई । भीम ने अयोध्या-नरेश को खबर पहुँचाई कि मेरी पुत्री दमयन्ती कुछ दिन में दूसरा स्वयंवर रचानेवाली है और उसे अपने हाँ बुला भेजा । ऋतुपर्ण ने अपने सारथी से पूछा कि क्या तू इतने समय में मुझे विदर्भ पहुँचा देगा । नल ने उत्तर दिया, 'हाँ, पहुँचा दूँगा ।' उसने राजा को रथ पर बैठाकर घोड़ों को हवा किया । जब विदर्भ पहुँचे तब उन्हें पता लगा कि यहाँ कोई स्वयंवर ही नहीं । राजा ने उन्हें एक विशेष स्थान पर ठहराया ।

नल का रंग-रूप, चाल-ढाल आदि सब गुण देखने के लिए दमयन्ती ने गुप्त रीति से उसके पास अपनी दासी भेजी । दासी ने आकर कहा कि वह बड़ा संयमी है, रसोई अच्छी बनाता है, मेरे सामने उस ने सूर्य्य को ऐसे ढग पर शीशा दिखाया कि अग्नि जलने लगी । दमयन्ती को निश्चय हो गया कि वह उसका पति ही है । दमयन्ती ने अपने दोनों बालक नल के पास भेज दिये । नल ने पहले दोनों को गोदी में लिया और फिर रोते रोते यह कहा कि मेरे भी ऐसे ही

पुत्र भरत को राज तिलक और राम को चौदह वर्ष का वनवास दे। कैकेयी को दासी का कुमन्त्र पसन्द आया। राजा महल में आया, तब कैकेयी छल करके उसे अपने फन्दे में फँसा लिया और कहा कि मेरे वे दो वर, जो आपने युद्ध में मुझ से कहे थे, आज पूरे करो। राजा ने वर माँगने को कहा तब कैकेयी बोली कि भरत को गद्दी मिले और राम चौदह वर्ष के लिए वन में रहें।

राजा वचन दे चुका था, रघुकुल रीति भी यही चली आई थी कि प्राण जाय तो जाय पर वचन पूर्ण हुये बिना न जाय। कैकेयी के स्वार्थपूर्ण शब्द सुनकर राजा को इतना खेद हुआ कि वह मूर्च्छित हो गया। जब रामचन्द्र आये तब उन्होंने अपने पिता की अवस्था देख माता कैकेयी से उस का कारण पूछा रानी ने सब कथा कही। रामचन्द्र ने कहा—'मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा यदि मेरे कारण पिता अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर सके।' कुछ दिन पहले जिस ख़ुशी से वे युवराज बनने के लिये तैयार थे, उसी तरह अब वन को जाने के लिये उद्यत हो गये। यह बात सीता को मालूम हुई तब उस ने अपने पति को समझा दी और स्वयं साथ जाने को कहा। रामचन्द्र बोले—'वन में काँटे होंगे, वे तुम्हारे कोमल पाँव में चुभेंगे। वहाँ जंगली पशु होंगे, तुम्हें उन से भय होगा।

तक में वन से न लौटूँ तुम अपने सासु ससुर की सेवा करना।' सीता ने उत्तर दिया, 'आप के बिना मेरा यहाँ रहना असंभव है। मुझे आप के संग रहते हुये किसी का डर नहीं हो सकता। जब आप चलेंगे तब मैं आपके आगे हो कर रास्ते के काँटे साफ करूँगी ताकि आप को कष्ट न हो। मेरे लिये फूलों की शय्या वही होगी जहाँ आप के पवित्र चरण कमल होंगे'। सीता की अनन्य भक्ति देख राम उसे अपने साथ ले जाने पर राजी हो गये। लक्ष्मण बाल्यकाल ही से राम के साथ रहा था। वह क्षणभर के लिये भी अपने बड़े भाई से पृथक् न होता था। उसने भी जाने पर आग्रह किया।

सीता, राम और लक्ष्मण के चले जाने पर अयोध्या नगरी बिलकुल सूनी मालूम पड़ने लगी। चित्रकूट पहुँच कर उन्हों ने रथ लौटा दिया। इधर जब दशरथ को यह समाचार मिला तब वह बेसुध हो कर भूमि पर गिर पड़ा। महारानी कौशल्या ने अपने पति का सिर गोद में ले लिया। राजा को सुधि आई तब कैकेयी ने अपनी भूल के लिए क्षमा माँगी। राजा ने रानी की गोद में ही अपना शरीर त्याग दिया। भरत ने राज्य करने से इनकार कर दिया, और राम के साथ रहने का निश्चय किया। स्वयं चित्रकूट पहुँच कर जेठे भाई से प्रार्थना की कि अयोध्या चल कर राज काज सँभालिये। राम इसे कैसे स्वीकार कर सकते थे। विवश भरत अकेला वापस लौटा और उनके स्थान पर

काम करने लगा। उधर सीता और लक्ष्मण सहित राम दण्डक वन में आत्रेय ऋषि के आश्रम पर गये। ऋषि की धर्म पत्नी भी वहीं थी। वे बहुत वृद्ध होने पर भी तप का जीवन व्यतीत करते थे।

सीता ने उन के चरणों में अपना सीस नवाया। सरल-स्वभाव बुढ़िया ने बैठने को कुशा का आसन दिया और कहा, 'तू रूपवती है; सौंदर्य एक बड़ा गुण है। तू स्वस्थ है, यह और भी अच्छा है। दुःख में भी तू पति का साथ देती है, यह सब से अच्छी बात है। मैं तेरे विषय में सब बातें सुन चुकी हूँ। राजपाट के सुख को लात मार कर पति की सेवा करना, यह कोई विरला स्त्री ही करती है। यह तूने बड़ी साहसिकता का काम किया है निडरता का परिचय दिया है। मैं यह सुनी बात नहीं कहती, मैं इसे अनुभव भी करती हूँ कि तू ने अपने धर्म का पालन किया है। पत्नी के लिये पति एक आदर्श पुरुष होता है। पतिव्रता नारी का मन अपने पति का दर्पण होता है, जिस में पति के विचार और भाव प्रतिबिम्बित होते हैं। पति का आचार व्यवहार मानो एक साँचा होता है, जिस में पत्नी का जीवन ढलता है। सीता, तेरे लिये राम ही आदर्श है।'

सीता ने उत्तर दिया, 'माता, मैं नहीं जानती कि मैं पति की आज्ञा पालन कर रही हूँ, मैं तो राम के शब्द को धर्म समझती हूँ। राम मुझे प्राणों से भी प्यारे हैं। अग्नि कुंड के

सामने खड़े होकर जब इन्होंने मुझ से ही प्रेम करने को प्रण किया, जब मेरी आँख इन की आँखों से मिली तब से मैंने किसी अन्य पुरुष की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा। तभी से मैं इन का पूजन करती हूँ। मैं नहीं जानती कि यह काम धनुष का था या परमेश्वर अथवा इन की आँखों का, केवल इतना जानती हूँ कि जब मैंने उधर से दृष्टि हटाई तब मेरे हृदय पर एक बोझ सा मालूम पड़ा। जहाँ पहले मेरे मन में घमण्ड, अविनय और स्वार्थ थे। जहाँ अब राम की मूर्त्ति बसने लगी। अब यही लुभाने वाली मूर्त्ति मेरे आनन्द और हर्ष का केन्द्र बन गई।' बूढ़ी अनुसूया ने सीता को असीस दी 'बेटी, तेरा सुहाग सदा के लिये बना रहे। तेरा यश और कीर्त्ति समस्त संसार में फैले।'

दण्डक वन से चलकर सीता, राम और लक्ष्मण विन्ध्याचल के घन वन में पहुँचे। यहाँ पर राक्षस रहा करते थे। लङ्का के राजा रावण की बहन शूर्पनखा भी यहीं रहती थी। राम को देख वह उन पर मोहित हो गई और पास जाकर उन से अपने दिल की बात कही। राम ने बहुत समझाया किन्तु उस की समझ में कुछ न आया। उस ने जब सीता को बुरा भला कहना शुरू किया तब लक्ष्मण ने उस का नाक काट डाली। बहुत शोर मचाती हुई वह अपने भाई के पास पहुँची और उसे बदला लेने के लिये उकसाया। इस पर रावण तैयार हो गया।

एक दिन सीता अकेली कुटी में बैठी थीं कि साधु का भेस बनाकर रावण आया और सीता से पूछने लगा कि "हे सुन्दरी, तू इस निर्जन वन में, जहां डरावने जंगली जानवर रहते हैं, कैसे आई है?" सीता ने अपना सारा हाल कह सुनाया। रावण ने सीता को फिसलाना चाहा। उसने कहा 'सीते, तू क्यों वन में दुःख उठाती है? मैं लङ्का का स्वामी हूँ। मेरे साथ चलो और मेरे महलों में रहो।' सीता ने घृणा से उत्तर दिया—'रावण, क्या तू नहीं जानता कि राम कितना तेजस्वी है। वे जब धनुष उठाते हैं तो प्रलय आ जाती है। यहां से चला जा, वरना दोनों भाई आ गये तो तेरा बचना मुश्किल हो जायगा।' रावण भी था बड़ा बलवान्, वह सीता को पकड़ कर लंका को चला गया।

राम और लछमण वापस लौटे। कुटिया खाली पड़ी थी। इधर उधर देखा भाला, परन्तु सीता का कोई पता न लगा। घबरा कर 'सीता' 'सीता' पुकारने लगे। भला जंगल में कौन सुनता था। शोकातुर और निराश हो दोनों भाई एक चट्टान पर बैठ गये। सोचते सोचते उनकी दृष्टि किसी आदमी के पदचिह्नों पर पड़ी। ख़याल दौड़ाया, हो न हो यह रावण की धूर्तता है। दोनों उठे और दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े। रास्ते में उन्हें घायल हुआ जटायु नामक एक गिद्ध मिला। उसने उन्हें बताया कि "रावण एक सुन्दर स्त्री को ज़बरदस्ती उठाये ले जारहा था। रावण से उस अबला को

छुड़ाने के प्रयत्न में मेरी यह दशा हुई है"। आगे बढ़ने पर उनकी राजा सुग्रीव से भेंट हुई। सुग्रीव अपने भाई के अत्याचर से तंग था। रामचन्द्र ने उसकी सहायता कर के उसे अपना राज्य दिलाया।

अब उन्हें यह सूझी कि लङ्का को जासूस भेजकर सीता का पता लेना चाहिए। सुग्रीव की सेना का सेनापति हनुमान था। हनुमान लङ्का गया। उसने देखा कि नदि के तट पर एक वृक्ष के नीचे सीता बैठी है। चहुँओर से कई स्त्रियों ने उसे घेर रक्खा है। उसका चेहरा उदास है। बाल बिखरे हुये हैं और वह हरबार आह भरती है। इतने में वहाँ रावण की सवारी आई। सीता भयभीत होकर उठ खड़ी हुई और घृणा से अपनी आँखें रावण से मोड़ लीं। रावण बोला—"तू मेरी क्यों बेइज़्ज़ती करती है? मेरा दोष केवल यही है न कि मैं तुम से प्यार करता हूँ। मेरा तन, मन, धन तेरे चरणों पर न्योछावर है।" सीता ने आकाश की ओर हाथ उठाया और कम्पित स्वर से कहा—"हा राम, तुम कहाँ हो? क्या तुम सीता को भूल गये? यह पापी मेरे नज़दीक आकर कैसी घमण्ड की बातें करता है? क्या तुम मेरी सुध न लोगे? इस पापी को दण्ड न दोगे?" रावण ने सीता को समझाया, बुझाया और धमकाया पर उस धर्मशीला ने एक न सुनी। निराश होकर वह वहाँ से चला गया।

हनुमान चुपके सीता के पास पहुँचा। राम की अंगूठी दे कर उस ने कहा कि मैं राम का दूत हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप को अपने साथ ले चलूँ। सीता ने उत्तर दिया—'इस अवस्था में मेरा यहाँ से निकल जाना बहुत मुश्किल है। और दूसरे मेरी यह इच्छा है कि राम स्वय आकर मुझे इस कैद से छुडायें। क्योंकि राम के लिये यह अपमानजनक बात है कि कोई दूसरा आदमी उन की पत्नी को कैद से रिहा कराये।' हनुमान ने वापस लौटकर राम को सीता का सारा हाल सुनाया।

राम और लक्ष्मण ने सुग्रीव की सेना लेकर लङ्का पर चढ़ाई की। सेना के आने का समाचार सुन रावण बहुत घबराया। किन्तु सीता का मोह उस के अन्दर से न गया। बहुत सोच-विचार के बाद उसे एक बात सूझी। उस ने राम का नक़ली धड़ बनवाया, और सीता के पास जा कर कहने लगा 'देख, अब वक्त आ गया है, तुझे अपनी मूर्खता का फल भोगना पड़ेगा। मैने तेरे लिये कितनी ही मुसीबतें झेली हैं। राम ने तुम्हारे साथ क्या भला किया है, जो तू उसके वास्ते दुःखी होती है और विलाप करती है। अब भी मेरा कहना मान ले।' सीता भयभीत हो कर जोरसे चिल्ला उठी—"राम, क्या आप मुझे इस पापी के बन्धन से मुक्त न कराओगे?" रावण ने कहा : "यह विचार तू अपने मन से निकाल दे। राम

तो मर गया है।" सीता इस बात को सुनकर अभी व्याकुल ही हो रही थी कि लङ्कापति ने कहा—"राम सेना लेकर यहाँ आया था। पर मेरे सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया और उस का वध कर डाला। देख यह उसका सिर है और यह उस का धनुष है, जो मेरे सिपाही रणक्षेत्र से उठा कर लाये हैं।" यह देखते ही सीता ने एक चीख मारी और बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़ी। नाउम्मेद होकर रावण वापस चला गया। रावण की स्त्रियों में से एक ने सीता को उठा लिया, उसके मुख पर पानी छिड़का और कान में कहा—"यह सब धोखा था, राम अभी जीवित हैं, और लङ्का में आने वाले हैं।" बस तब क्या था, ये शब्द सुनते ही सीता उठ खड़ी हुई।

इस के बाद राम और रावण में कई दिन तक युद्ध होता रहा। रावण और उस के सिपाही बड़ी बहादुरी से लड़ते रहे। किन्तु राम के आगे उस की एक न चली। एक एक करके उस के सभी सेनापति मारे जाने लगे। जिस दिन रावण मारा गया, राम की आज्ञा से उस के भाई विभीषण को राजगद्दी पर बिठाया गया। शहर में घोषणा की गई कि यह चढ़ाई केवल पापी रावण को दण्ड देने के लिये की गई थी। प्रजा को अपनी स्वाधीनता की कदर करते हुये अपना रहन सहन पूर्ववत रखना चाहिये।

सीता को विमान पर बिठाकर राम अयोध्या आये।

भरत, शत्रुघ्न और सब रानियाँ उन को देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं। राम अयोध्या के सिंहासन पर विराजमान हुये। सीता सुख से जीवन व्यतीत करने लगी। उन के दो बेटे लव और कुश उत्पन्न हुये।

द्रौपदी।

जो भाग सीता का रामायण में है वह द्रौपदी का महाभारत में है। द्रौपदी महाभारत के केन्द्र के समान है, जिस के गिर्द सारी कथा घूमती है। सब से पहले द्रौपदी के दर्शन स्वयंवर में होते हैं। द्रुपद राजा की पुत्री जब युवावस्था को प्राप्त हुई तब उस ने बड़ा भारी स्वयंवर रचा। देश देशान्तरों के राजा द्रौपदी के सौन्दर्य की चर्चा सुन चुके थे। इस लिये अपना अपना बल दिखाने के लिए सब स्वयंवर में एकत्रित हुए। इस स्वयंवर में पाँचों भाई भी आ मौजूद हुये। इन्होंने ब्राह्मणों का भेस धारण किया हुआ था।

धृतराष्ट्र के पुत्रों में दुर्योधन सब से बड़ा था। ये सब कुरु कहलाते थे। युधिष्ठिर और उस के चार भाई अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव धृतराष्ट्र के बड़े भाई पाण्डु के बेटे थे। इसी कारण उन्हें पाण्डव कहा जाता है। पाण्डु हस्तिनापुर का राजा था और उस की मृत्यु के बाद राज्य का अधिकार उस के बड़े बेटे युधिष्ठिर का था।

उस का चचा धृतराष्ट्र राज्य का संरक्षक बन गया। इस के मन में यह कामना उठी कि राज्य उसके बेटे दुर्योधन को मिल जाय। दुर्योधन बचपन से ही युधिष्ठिर आदि से जलता रहता था। धृतराष्ट्र ने इन सब की शिक्षा के लिये द्रोणाचार्य को नियत किया था। शिक्षा पाते हुये पाण्डवों में से भीम शारीरिक बल में और अर्जुन तीरन्दाजी में अद्वितीय बन गये। इस से दुर्योधन की ईर्ष्या इतनी बढ़ी कि वह पाण्डव भाइयों को देख न सकता था। उस ने कई उपाय किये, जिनसे उन्हें जान से मरवा डाले। अन्त में उस ने कुन्ती और उस के पुत्रों के रहने को एक लाख का महल तैयार करवाया। इस ने ऐसा प्रबन्ध किया कि जब वे उस महल में प्रवेश करें तब आग लगा दी जाय। पाण्डवों को इस बात का पता लग गया। उन्हों ने ज़मीन में से बाहर जाने का एक रास्ता बना लिया। महल को आग लगा दी गई। पर वे बाहर निकल गये। वे भेष बदले हुये फिर रहे थे कि उन्हें स्वयंवर की खबर मिली। वे वहाँ पहुँचे।

स्वयंवर की शर्त पूरा करना एक कठिन परीक्षा थी। भूमि पर पानी का एक हौज़ था, जिस के बीच में बाँस पर एक चक्र घूम रहा था। घूमते चक्र में एक बनावटी मछली लगी थी, जिस की छाया पानी में पड़ती थी। छाया को देखकर नीचे से मछली की आँख में निशाना लगाना था। यही शर्त थी। कई क्षत्रिय मैदान में निकले परन्तु कोई

निशाना न मार सका। अन्त में कर्ण धनुषबाण हाथ में लिये मैदान में निकला। कर्ण सूत का लड़का है, द्रौपदी को इशारे से यह मालूम होगया। उसने ऊँचे स्वर से कहा—'तुम शर्त को न अजमाना, मैं सूत पुत्र के साथ व्याह न करूँगी।' कर्ण अपना सा मुँह लेकर वापस चला गया। इतने में ब्राह्मण वेषधारी अर्जुन सभा में से निकला। उसने इस खूबी से तीर चलाया कि वह मछली की आँख में जा लगा। सब तरफ़ से 'वाह' 'वाह' की ध्वनि उठी। द्रौपदी ने फूलों की माला अर्जुन के गले में डाल दी।

जब क्षत्रिय राजाओं ने देखा कि एक ब्राह्मण द्रौपदी को जीत ले गया है तब उन्हें इससे कुछ दुख सा हुआ। और उन में से कुछ पाण्डव भाइयों के साथ लड़ने को तैयार होगये। कृष्ण भी स्वयंवर में उपस्थित थे। यद्यपि उन्होंने पाण्डवों के जलने का समाचार सुन लिया था, तो भी उन पाँचों को अपनी माता समेत देखकर व उन्हें पहिचान गये और समझ लिया कि पाण्डव अभी जिन्दा हैं। वे उनकी सहायता को जा पहुँचे और झगड़ा करनेवाले क्षत्रियों को पीछे हटा दिया। तत्पश्चात उनसे पहली बार मिल कर कृष्ण ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। कृष्ण द्रौपदी को उन के साथ लेकर हस्तिनापुर आये। और धृतराष्ट्र से पाण्डवों को अपना भाग दिलाकर यह निश्चय किया कि पाण्डव अपने लिये एक नई राजधानी क़ायम करें। इन्द्रप्रस्थ शहर बसाकर पाण्डवों ने इसे अपनी राज-

धानी बनाया और वहाँ आनन्द से रहने लगे।

दूसरी बार द्रौपदी हमारे सामने उस समय आती है जब कि दुर्योधन पाण्डवों के नये बनाये हुये महलों के देखने के लिये आया। इन महलों को ऐसी कारीगरी से बनाया गया था कि साधारण मनुष्य धोखे में पड़ जाता था। एक जगह पर बालू इस ढंग से डाली गयी थी कि आते हुये दुर्योधन को अपने सामने पानी दिखाई दिया और उस ने अपने कपड़ों को ऊँचा कर लिया। आगे चल कर एक जगह पानी था। दुर्योधन उसे बालू जान कर उस के अन्दर चला गया और अपने सब कपड़े भिगो लिये। द्रौपदी खड़ी हुई सब देख रही थी। उस ने खिल्ली उड़ाई। दुर्योधन ने इस बेइज्जती को अपने दिल में रख लिया।

ऐसा मालूम होता है कि उस समय क्षत्रियों में जूआ खेलने का रिवाज था और जब एक क्षत्रिय को बाजी लगाने के लिये निमन्त्रण दिया जाता था तब उसे मंजूर न करना उस की हार मानी जाती थी। दुर्योधन ने अपने मामा शकुनी की सलाह से युधिष्ठिर को पासा खेलने के लिये निमन्त्रित किया। युधिष्ठिर ने उसे मंजूर कर लिया। पासा कपट का बनाया गया था। इसलिये शनैः शनैः युधिष्ठिर सब कुछ हारता गया। यहाँ तक कि अपना सब माल असबाब और राजधानी भी हार दी। तब अपने आप को और अपने भाइयों को बाजी पर लगाया। यह बाजी भी हार दी।

तत्पश्चात् द्रौपदी को बाजी पर लगाया, वह भी हर गई।

अब तीसरी बार हम द्रौपदी को दुर्योधन की सभा में आते हुये देखते हैं। दुर्योधन का भाई दुःशासन द्रौपदी को केशों से खेंचते हुये सभा में लाता है। भीष्म द्रोणाचार्य आदि सब सभा में उपस्थित हैं। द्रौपदी 'हा कृष्ण' 'हा कृष्ण' ये शब्द मुँह से निकालती है। उस ने सभा से यह प्रश्न किया कि "जब युधिष्ठिर अपने को पहले हार चुका है तब वह दूसरे के अधीन हो गया है। इसलिये उस्म फिर खेलने और मुझे बाज़ी पर लगाने का कोई अधिकार नहीं रहना"। द्रौपदी की युक्ति इतनी प्रबल थी कि सब चुप होगये और कोई उत्तर न दे सका। भीष्म ने सिर्फ यही कहा कि धर्म का समझना बड़ा मुशकिल है। अकेले विकर्ण ने कहा कि युधिष्ठिर पहले अपने आप को दाँव पर लगाकर हार चुका था, इसलिये द्रौपदी स्वतन्त्र समझी जानी चाहिये। द्रौपदी बोली: 'पहला स्वयंवर का समय था जब मैं सभा में खड़ी हुई थी, सब की आँख मुझ पर लगी थी। अब यह दूसरी बार है जब कि भरी सभा में मेरी यह दुर्दशा हो रही है सब लोग देखते हैं पर मेरा कोई सुननेवाला नहीं।' धृतराष्ट्र ने कहा—' यदि युधिष्ठिर कह दे कि तू स्वतन्त्र है तो मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगा।' युधिष्ठिर शरम के मारे आँखें नीची किये खड़ा रहा। धृतराष्ट्र के हवनकुंड में से गीदड़ों के बोलने की आवाज आई। इस से धृतराष्ट्र इतना घबराया

कि उस ने द्रौपदी को संतुष्ट करना चाहा, और द्रौपदी की इच्छानुसार पाण्डवों को एक बार मुक्त कर दिया। धृतराष्ट्र ने द्रौपदी से कहा—'और क्या चाहती है?' द्रौपदी ने उत्तर दिया—'मैं लोभ को पाप समझती हूँ इसलिये और कोई इच्छा नहीं रखती।'

वे सब अपनी अपनी राजधानी की ओर आ रहे थे कि दुर्योधन की छाती पर साँप लोटने लगा। वह उन्हें मुक्त न देख सकता था। दुबारा जुआ खिलाने का विचार कर के उसने युधिष्ठिर को बुलाया। युधिष्ठिर ने लौट कर दुबारा पासा खेलना शुरू किया। नतीजा फिर वही हुआ। परन्तु अब की पाण्डवों को तेरह बरस का बनवास दिया गया।

पाण्डव भाई द्रौपदी के साथ बन में रहते थे जब महाराज कृष्ण उन्हें आकर मिले। द्रौपदी कृष्ण से बोली—'मैं तुम्हारे नाम की पुकार कर रही थी, जब कि मेरा इतना अपमान किया गया। मेरे केश पकड़ कर मुझे घसीटा गया। उस समय मैं भीम के बाहुबल और अर्जुन के धनुष को धिक्कारती रही, क्योंकि वे मेरे मान की रक्षा न कर सकते थे। स्त्री के लिये एक मान ही सब से उत्तम और अमूल्य वस्तु है। दुर्योधन ने मेरे मान का नष्ट कर दिया।' इतना कह कर द्रौपदी फूट फूट कर रोने लगी। कृष्ण बोले—'द्रौपदी, तू मत रो! जो अत्याचार तुम पर किया गया है वह अपना फल लायगा। इस बीज से एक ऐसा घोर युद्ध होगा,

जिस से तुम्हारे शत्रुओं की स्त्रियाँ भी ऐसा ही रोदन करेंगी जैसा तुझे करना पड़ा है। किसी के लिये सब दिन एक जैसे नहीं होते। तुम्हारे दिन फिर लौटेंगे और तू फिर अपने पद को प्राप्त करेगी। पाण्डवों का राज्य-चक्र फिर वैसा ही चलेगा'।

द्वैत वन में रहते हुये द्रौपदी और युधिष्ठिर एक दिन आपस में बातें करने लगे। द्रौपदी युधिष्ठिर से कहने लगी, "मेरे चित्त को कैसे शान्ति हो जबकि महलों में रहने वाले वृक्षों के तले आश्रय ढूंढ रहे हैं। न आप के शरीर पर वस्त्र है, न माथे पर चन्दन। इधर आप की यह दशा है उधर दुष्ट दुर्योधन अपने महलों में आनन्द कर रहा है। आप इस कष्ट को सहन कर रहे हैं। भीम दुर्बल हो रहा है, अर्जुन तीर चलाना भूल गया है। तिस पर भी आप के मन में क्रोध का लेशमात्र भी उत्पन्न नहीं होता? शास्त्र में कहा है जिस में क्रोध नहीं वह क्षत्रिय नहीं। जिस में क्रोध नहीं होता उस की कोई परवा नहीं करता। शत्रु को क्षमा करना भारी भूल है। जिसने कभी किसी पर उपकार किया हो उसकी भूल तो क्षमा की जा सकती है। पर जिसके स्वभाव में ही दुष्टता हो वह क्षमा का पात्र नहीं हो सकता।"

इस पर युधिष्ठिर ने द्रौपदी को क्रोध की हानियों और क्षमा की उपयोगिता पर अपने विचार बताये। और कहा कि अक्रोधी ही ब्राह्मण पद को प्राप्त कर सकता है

...के उत्तर में द्रौपदी बोली—"आपका कथन कुल की ...ति के अनुसार नहीं है। शास्त्र तो यह कहते हैं कि जब ...ई धर्म की रक्षा करता है तो धर्म उसकी रक्षा करता ...। किन्तु आपकी अवस्था तो इसके उलट दिखाई देती ...। आपने सदैव धर्मानुसार आचरण किया, पर आपका ...ग्य ऐसा मन्द निकला है कि आपने अपना सब राजपाट ...र दिया है। आप पर यह आपत्ति देख कर मेरी बुद्धि ...चलित हो रही है। मुझे समझ नहीं आता कि दुनिया ... क्या करना अच्छा है और क्या बुरा। आप सन्मार्ग ...र आचरण करते हुये दुःखसागर में पड़े हैं और पापी ...र्योधन दुष्ट आचरण करता हुआ आनन्द से राज्य भोग ...ा है। यह देख कर यही कहना पड़ता है कि परमात्मा ...ी लीला अपरम्पार है। हमारे लिये उसे जानना कठिन है।

युधिष्ठर ने द्रौपदी से कहा धर्म पर आचरण करने का ...ल इस संसार में सुख और भोग नहीं होते। यदि धर्म पर ...लने से सांसारिक सुख प्राप्त हों तो दुनिया में सब लोग ...प से आप ही धर्म पर आचरण करने लग जायँ। धर्म ... मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान ...शकिल है। इसी कारण धर्म मार्ग का उपदेश करने के लिये ...षि, मुनि और आचार्य अपना बहुत-सा समय बिताते हैं। ... फल की इच्छा से मैं धर्मकर्म नहीं करता। जो फल की ...च्छा से धर्मकर्म करता है वह नीच होता है। धर्म वही है,

जिस को वेद में आशा है। ईश्वर के लिये अन्याय के शब्द तुम अपने मुख पर कभी न लाना। जितना ईश्वर के विषय में हम जानते हैं उतना ही हम उस का न्याय देखते हैं। उसे जानना ही दुःखों से छूटना और अमृत को पाना है।"

द्रौपदी बोली—"मेरे कहने का अभिप्राय केवल यही है कि आप अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिये उद्यत हो जायँ मनुष्य की वर्त्तमान अवस्था उस के कर्मों का फल है। जो कर्म हम अब करेंगे उन से हमारा भविष्य बनेगा। निश्चेष्ट हो जाना और कर्म का त्याग करना मनुष्य के लिये सम्भव नहीं है। यदि आप कर्म पर तत्पर हो जायँगे तो आप के सब कष्ट दूर हो जायँगे, आप को राज्य प्राप्त होगा और आप राज्य के सब सुख भोग सकेंगे। कर्म ही सफलता का रहस्य है।"

कुछ समय के पश्चात कृष्ण की प्यारी रानी सत्यभामा भी वहाँ पर आई। उस ने द्रौपदी से एक बड़े रहस्य की बात पूछी—"हे द्रौपदी, क्या कारण है कि सब पाण्डव तुम्हारा इतना मान करते हैं।" द्रौपदी ने उत्तर दिया—"सत्यभामा, तुम ने मुझ से यह बात पूछी है, जिसे स्त्रियें कहना पसन्द नहीं करतीं। मूर्ख स्त्री अपने पति को वश में रखने के लिये कई ढंग रचती है। इसी कारण उस का पति उस से घृणा करता है। मैंने कभी ऐसा नहीं किया। मेरे मन में ईर्ष्या नहीं है। न कभी मैं किसी के गुस्से होती हूँ

मेरे मुँह से कभी कड़वे शब्द नहीं निकलते। मैं अपना मकान साफ सुथरा रखती हूँ और भोजन सब से पीछे करता हूँ। मेरा चित्त सदैव उन की सेवा में रत रहता है। और मैं सदा युधिष्ठिर की सम्मति के अनुकूल आचरण करती हूँ। जब मैं महलों में रहती थी तब हजारों नौकर नौकरानियाँ थीं, जिन के नाम मुझे याद रखने पड़ते थे। और हजारों हाथी घोड़ों का मुझे ध्यान रखना पड़ता था। अस्सी अस्सी हज़ार अनाथों और ब्राह्मणों को मुझे भोजन कराना पड़ता था।

स्त्री के लिये पति से बढ़कर और कोई पूज्य नहीं। हे सत्यभामा, तुम भी कृष्ण को ऐसी ही प्यारी हो जाओ। कोई बात उन से छिपाये न रक्खो। शुद्ध और पवित्र हृदया स्त्रियों के साथ तुम्हारा मेल जोल हो। सब बातों को छोड़ कर पति के सम्मान का ख़याल रक्खो।"

इस प्रकार के संवादों में द्रौपदी ने अपने बनवास का जीवन व्यतीत किया। तेरहवें बरस उसने विराट राजाके हाँ नायन बन नौकरी की। वहाँ पर दुष्ट कीचक द्रौपदी के पीछे पड़ गया। जब भीम को इस की ख़बर लगी तब उस ने कीचक को मार डाला। इस वर्ष के अन्त में कुरुक्षेत्र में वह महायुद्ध हुआ, जिस में भारत के बड़े बड़े योद्धा और वीर मैदान में काम आये। द्रौपदी हमारे सामने फिर उस समय आती है जब कि द्रोणाचार्य के धोखे से मारे जाने पर उसके पुत्र अश्वत्थामा के हृदय में क्रोधाग्नि प्रचण्ड होगई और उस

ने रात को द्रौपदी के सब पुत्रों का क़त्ल कर डाला।

प्रात काल यह समाचार सुनते ही द्रौपदी बेहोश होगई। भीम का हृदय क्रोध से काँप उठा और उस ने अश्वत्थामा के वध की ठान ली। द्रौपदी भीम से कहने लगी—हे भीम, मैंने सुना है कि अश्वत्थामा के मुकुट में एक हीरा है। उस का वध करके हीरे को महाराज युधिष्ठिर के सिर पर सजाना होगा'। भीम ने वह हीरा लाकर द्रौपदी को दिया और उसने अपने हाथ से उसे* युधिष्ठिर के सिर पर रक्खा।

---

*कहा जाता है कि वह हीरा वही 'कोहनूर' था, जोकि आज तक पृथ्वीतल पर सब से बड़ा माना गया है। इसकी कथा भी बड़ी मनोरञ्जक है। ज्यों ज्यों भारतवर्ष का राज्य एक से दूसरे के हाथ में गया, हीरे का भाग्य भी बदलता रहा। युधिष्ठिर से लेकर जितने राजा दिल्ली की गद्दी पर बैठे, उनके सिर पर यह हीरा चमकता रहा। राजपूत आये। उन के बाद कई मुसलमान वंश दिल्ली के शासक बने। उनके हाथों से होता हुआ नादरशाह की लूट के समय यह हीरा उसके हाथ में चला गया। नादरशाह से यह हीरा अब्दाली और उसके बेटों के पास पहुँचा। शाहशुजा से महाराज रणजीतसिंह ने चालाकी से यह हीरा ले लिया। शुजा लाहौर में उसका मेहमान था रणजीतसिंह हीरा लेने का यत्न करता रहा पर वह काबू में न आता था। एक समय इकट्ठे बैठे हुये थे कि महाराज ने शाह से कहा कि "हम दोनों को पक्के दोस्त बन जाना चाहिये"। और झटपट अपनी पाग उसके सिर पर रखदी और उसकी अपने सिर पर रखली।

वैदिक काल।

मनुष्य-उत्पत्ति के समय मनुष्यों की संख्या बहुत थोड़ी थी। ज्यों ज्यों समय गुज़रता गया मनुष्य-संख्या बढ़ती गई। आरम्भ के मनुष्यों की आवश्यकतायें भी बहुत थोड़ी थीं। उन की इच्छायें भी अधिक न थीं। उन के लिये पृथ्वी बहुत विस्तृत थी। तब पृथ्वी अथवा नदियों के जल से जो पैदावार उन को मिलती वह उन की आवश्यकता से बढ़ कर थी। तब परस्पर उन में न तो कोई द्वेष या विरोध का भाव पाया जाता था और न उन्हें किसी प्रकार के पाप या अन्याय करने की आवश्यकता होती थी। आज कल हमारे सब झगड़े-फसादों की जड़ में रुपये, ज़मीन या स्त्रियों का लोभ होता है। उन लोगों की आत्मा इन तीनों प्रकार के लोभों से बची हुई थी और उन में परस्पर झगड़े न होते थे। लोग सच बोलते थे। किसी की चोरी अथवा निन्दा न करते थे और न

महाराज रणजीतसिंह की मृत्यु के पश्चात् यह हीरा सिक्ख दरबार में रहा। जब १८४६ में लार्ड लॉरेंस ने लाहोर पर अपना अधिकार किया तब उसने इसे इंगलैण्ड की राजधानी लन्दन को भेज दिया। अब यह हीरा इंगलैण्ड-सम्राट के ताज की शोभा बढ़ाता है।

दूसरे के माल पर बुरी नज़र रखते थे। स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह पूर्ण स्वतन्त्र थीं और यौवन-सम्पन्न होने पर विवाह किया करती थीं। तब समाज में व्यभिचार के पाप का अभी अंकुर भी पैदा नहीं हुआ था। लोग अभी विषय-वासनाओं में लिप्त नहीं हुये थे। इसी कारण उस समय को सतयुग या कृतयुग कहा जाता है।

आर्य जाति के प्राचीन इतिहास के संबंध में नया मत यह है कि आर्य जाति की वास्तविक जन्मभूमि वह प्रान्त था जो एक ओर काबुल नदी और दूसरी ओर यमुना नदी तक फैला हुआ है। आर्य लोगों ने इसे 'सप्तसिन्धु' का नाम दिया था। ईरान के ईरानी इसी जगह से चलकर ईरान में जा बसे। उन के धर्म-ग्रन्थ 'ज़न्द' में इस प्रदेश का नाम हप्तहिन्दु लिखा है। इसी प्रदेश से भिन्न भिन्न कालों में आर्य जाति के कुछ भाग स्थल-मार्ग से योरप में प्रविष्ट हुए। योरप की वर्तमान जातियाँ उन्हीं की नसल से हैं।

जो लोग वेदों में इतिहास का होना मानते हैं उन का यह मत है कि आर्य जाति के पंजाब में उत्पन्न होने या आगमन से पूर्व ही यहाँ पर मनुष्यों के कुछ क़बीले रहा करते थे, जिन के साथ आर्य लोगों को बाक़ायदा युद्ध करने पड़े। ऋग्वेद की ऋचाओं में उन शत्रुओं को नाश करने के लिये परमात्मा से प्रार्थनायें की गई हैं। आर्यजाति अधिक बलवान् और बुद्धिमान् थी। इस लिये उस ने पुराने क़बीलों को मरा

कर अथवा भगाकर सारे देश को अपने कब्जे में कर लिया।

प्रारम्भिक काल में आर्यों की सब से बड़ी आवश्यकता ज्ञान के दीपक को बचाये रखना था। उस समय अभी लेखनकला का आविष्कार नहीं हुआ था। उस ज्ञान अथवा वेद को न केवल स्मरण रखना ही आर्यों का मुख्य कर्त्तव्य था प्रत्युत साथ ही यह भी आवश्यक था कि ज्ञान की रक्षा के लिये नवयुवकों को इस की शिक्षा दी जाय। वेद को याद रखनेवाले और पढ़ानेवाले ब्राह्मण ही जाति के वास्तविक नेता थे जिन की सेवा-शुश्रूषा और पालनपोषण करना सब का परम धर्म था।

ज्यों ज्यों आर्य जाति को दूसरे कबीलों के साथ युद्ध करने पड़े एक तो शस्त्रविद्या का प्रचार होता गया और दूसरे इन शस्त्रों को चलानेवाली एक विशेष श्रेणी बनती गई, जो क्षत्रिय कहलाने लगे। मनुष्य-संख्या के बहुत बढ़ जाने से दिन प्रतिदिन यह भी आवश्यक होता गया कि लोगों का एक बड़ा भाग धन कमाने में लगा रहे ताकि ब्राह्मणों और क्षत्रियों का भी भली प्रकार पालन पोषण हो सके। धनोपार्जन करनेवाली श्रेणी वैश्य कहलाती थी। वैश्यों का सब से बड़ा काम कृषि था। और गौएं ही उनका सब से बड़ा धन था, यद्यपि वेदों में अच्छे घोड़ों, रथों और बैलों की वृद्धि के लिये बार बार प्रार्थनायें आती हैं। केवल सेवा करनेवालों को शूद्र कहा जाता था।

वैदिक काल ही में समाज इन चार विभागों में बट चुका था । प्राचीन ईरानियों में भी समाज के यह चार विभाग पाये जाते थे । इस से यह प्रकट होता है कि जब ईरानी लोग हिन्दू आर्यों से अलग हुए उस समय समाज के ये चार विभाग हो चुके थे । आश्चर्य की बात है कि प्राचीन मिस्रियों में भी यह चार विभाग वैसे ही पाये जाते हैं । इस से यह परिणाम निकलता है कि पुराने मिस्रियों और असीरिया की जातियों का भी आर्यों से बहुत संसर्ग था ।

वेदों के अध्ययन के साथ साथ आर्य ऋषियों का बहुत सा समय यज्ञों के अनुष्ठान में व्यतीत होता था । जहाँ कहीं किसी ऋषि का आश्रम था वहाँ हर रोज़ पवित्र अग्नि जलाई जाती थी और मधुर स्वर से वेदमन्त्रों का उच्चारण किया जाता था । इन यज्ञों में पशुओं के वध किये जाने के विषय पर भी फिर वही दो मत हो जाते हैं । साधारण मत तो यह है कि इन यज्ञों के साथ साथ क्षात्र भाव को जीवित रखने के लिये झटके से पशु का वध किया जाता था और उसका मांस खाना एक प्रकार का धर्म माना जाता था । दूसरा यह है कि आर्य लोग मांस का खाना पाप समझते थे और इस लिये यह सम्भव नहीं कि वे अपने यज्ञों में पशु वध करते हों ।

उपनिषद्-काल।

वैदिक काल के ऋषि और आर्य तो इस ब्रह्माण्ड को आश्चर्य भाव से देखते थे। उनकी शुद्ध पवित्र दृष्टि जिधर जाती थी प्रकृति के महान् सौन्दर्य का अनुभव करती थी। इस प्राकृतिक सौन्दर्य को देखते हुए वे इस के प्रेम में मग्न हो जाते थे और स्वाभाविक ही उनकी वाणी से प्रकृति के दृश्यों और उनके रचयिता की महान् शक्ति के गुणों का गायन निकलता था।

वैदिक काल के समाप्त होने पर जब हम उपनिषद्-काल में आते हैं तब हम को दूसरा दृश्य दिखाई देता है। आर्य ऋषि प्रकृति-प्रेम में मग्न नहीं मालूम होते। वे सृष्टि को देखते हैं और इसके संबंध में बड़े गूढ़ विचारों में पड़ जाते हैं। उन के सामने हल के लिये बड़े बड़े प्रश्न उपस्थित होते हैं। यह ब्रह्माण्ड क्या है? कैसे बना है? इस का बनाने वाला कौन है? वह क्या चाहता है? मैं क्या हूँ? मेरे अन्दर ज्ञान शक्ति किस से है? यह आत्मा कहाँ से आती है? किधर को जाती है?

उपनिषदों और आरण्यकों में इस प्रकार के प्रश्न हैं, जो उन के लेखकों को घबरा देते हैं उन्हें विचार सागर में डाल देते हैं। आर्य जाति युवा अवस्था से निकल कर विचार और ध्यान की अवस्था में आजाती है। दूसरे सब क्रीड़ा

उनके मुक़ाबले से हट गये हैं और आर्यों के लिये युद्ध का समय बीत चुका है। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य पाये तो जाते हैं परन्तु सब का चित्त सृष्टि के रहस्य की जिज्ञासा में लगा हुआ दिखाई देता है। राजा गद्दी पर बैठे हैं। पर उन को भी इस के सिवाय और कोई काम नहीं मालूम होता कि ब्राह्मणों को बुलायें और इन प्रश्नों का उत्तर मालूम करें। ऋषि जङ्गलों में अपनी अपनी कुटिया बनाकर बैठे हैं। वहाँ पर अपने शिष्यों के साथ वे इन्हीं प्रश्नों पर विचार करते हैं। गार्गी, मैत्रेय आदि आर्य देवियाँ भी हैं, जिन का चित्त इन्हीं प्रश्नों से व्याकुल हो रहा है। स्त्रियों में सुलभा जैसी ज्ञानवति नारियाँ हैं, जो इन विचारों में जनक जैसे जीवन-मुक्त राजर्षियों को पछाड़ देती हैं।

उपनिषद् काल में छोटी छोटी राजधानियाँ भी बन जाती हैं। तब राजा केवल अपने अपने गाँव के ही अधिपति हुआ करते थे। जब कभी उन में ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा प्रबल होती थी तब वे राज्य को छोड़ कर जङ्गलों में कुटिया बना कर रहते थे। उनकी दृष्टि में राजगद्दी पर बैठ कर न्याय करना और वन-कुटिया में बैठ कर विचार करना एकसमान था। उस समय तक गवर्नमेंट न बनी थी और न इन छोटे छोटे गाँव के राजाओं के चित्त में कभी इच्छा होती था कि वे अपने आप को सम्राट् बनायें। भारत के इस काल को हम त्रेतायुग कह सकते हैं। इस की विशेषतायें अधिकतर सह-

युग के साथ मिलती है। उपनिषद् काल में विवाह की प्रथा बढ़ने लग जाती है और राजाओं के हाथ में दण्ड देने की शक्ति भी आ जाती है। समाज में सत्य का बड़ा प्रभाव पाया जाता है। उदाहरण के लिये हम देखते हैं कि एक स्त्री जबाला का लड़का गुरु के पास जाता है। गुरु उस से पिता का नाम पूछता है। शिष्य सरल स्वभाव से उत्तर देता है कि मेरी माँ ने मुझे इतना ही बताया है कि वह कई पुरुषों के साथ रही है। इस से मैं अपने पिता का नाम नहीं बता सकता। इस सरल उत्तर से ऋषि बहुत प्रसन्न होता है और उसे कहता है कि तुम ने सच बता दिया है इस लिये तुम्हारा नाम सत्यकाम है।

वीर-काल।

रामायण।

त्रेतायुग बीत जाता है। इस में सैकड़ों क्या हज़ारों वर्ष लग गये होंगे। इस काल में एक बड़ा परिवर्तन हो जाता है और हम द्वापरयुग में पदार्पण करते हैं, जिसे वीर-काल कहा जा सकता है।

उपनिषद् काल में आर्य जाति बाह्य जगत् से विरक्त होकर प्रकृति के आन्तरिक तत्त्व को ढूँढने में लग जाती है।

अपने मार्ग को ढूँढ़ती हुई यह आत्मिक आदेश को पा लेती है । किन्तु लोगों का चित्त अब फिर बाह्य संसार की ओर लौटने लगता है । इसका विशेष कारण यह प्रतीत होता है कि द्वापरयुग में मनुष्य-संख्या बहुत बढ़ गई थी। इस से धन की भी बहुत वृद्धि होने लगी । राजाओं ने राजधानियाँ बढ़ानी आरम्भ कीं । इस समय की विशेषता बड़े बड़े शक्तिशाली और ऐश्वर्यवान् राजा हैं, जिन को हर समय अपनी अपनी राजधानी की उन्नति की चिन्ता लगी रहती है ।

इस युग का चित्र हमें दो बड़ी पुस्तकों—रामायण और महाभारत—में देखते हैं । यह चित्र ही हमारे लिये उस काल का बड़ा इतिहास है । सीता के जीवनचरित्र में रामायण का और द्रौपदी के चरित्र में महाभारत का कुछ थोड़ा सा वर्णन हम ने कर दिया है । इन का विस्तृत वृत्तान्त तो इन पुस्तकों के पढ़ने से ही पता लगता है यहाँ पर इतना लिखना ही पर्याप्त होगा कि रामायण विशेष रूप से इस बात को दर्शाती है कि उत्तरी भारत के राजा दशरथ के पुत्र मर्यादापुरुषोत्तम राम ने किस प्रकार दक्षिण के वनों में रहनेवाली जातियों और लङ्का के राक्षसों पर विजय प्राप्त करके आर्य सभ्यता को देश के दक्षिणी कोने तक जा फैलाया । और इस विजय को प्राप्त करने के लिये श्री राम ने किस प्रकार कुछ जातियों को अपने साथ मिला कर शत्रुओं को परास्त किया । यह बात भली भांति प्रकट करती है कि भारत के राजा वर्तमान राज-

नीति की चालों को समझने और प्रयोग करने लग गये थे। जगह जगह पर वनों में ऋषियों के आश्रमों और उन की यज्ञालयों के वर्णन से यह पता लगता है कि उस समय जाति के ऋषि उस भावी विजय के लिये ठीक वैसे ही रास्ता बना रहे थे, जैसे आज कल के पादरी और योरोपियन व्यापारी योरप की जातियों के साम्राज्य-विस्तार के लिये भिन्न भिन्न देशों में करते हैं।

रामायण से उस जमाने के पारिवारिक जीवन और तत्कालीन शासन पद्धति का बहुत अच्छा चित्र मिलता है। पिता पुत्र, भाई-भाई, माता पुत्र और पति पत्नि के सबंधों का इस में इतना अच्छा वर्णन है कि वे अब तक हिन्दुओं के लिए आदर्श चले आते हैं। राजा दशरथ का अपने नगर के ब्राह्मण और क्षत्रियों को एक सभा में बुलाना और उन से रामचन्द्र का राजतिलक देने का परामर्श लेना और राजा की मृत्यु के पश्चात् फिर उस सभा का इसी लिये इकट्ठा होना यह स्पष्ट बतलाता है कि उस समय प्रजा का राजप्रबन्ध में बड़ा भारी अधिकार था।

* * *

(२) महाभारत।

इस काल की दूसरी पुस्तक महाभारत तो उस समय का विश्वकोष है। इस में प्राचीन इतिहास, राज्यधर्म, राज-नीति, ज्ञान, तत्त्व, दर्शन आदि सब विषयों पर बड़े गम्भ

विचार पाये जाते हैं। श्री रामचन्द्र ने तो आर्य राज्यों की सीमा को लङ्का तक ले जाकर इस देश को एक बना दिया था। और महाभारत के युद्ध के समय हम देखते हैं कि पाण्डवों ने घोड़े फिरा कर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था। इस का परिणाम यह हुआ कि जब पाण्डवों और कौरवों की सेना कुरु क्षेत्र में इकट्ठी हुई तब कुरु वंश का प्रताप और प्रभाव इतना बढ़ा हुआ था कि देश विदेश के सब राजा अपने झण्डे और सेनायें लिये दोनों में से एक की सहायता के लिये आ उपस्थित हुये। भारत की राजनैतिक एकता का यह ऊँचा दर्जा था।

परन्तु जो चित्र महाभारत हमारे सामने लाती है वह यह है कि उस समय आर्यजाति के राजाओं में वह ईर्ष्या-द्वेष का भाव उत्पन्न होगया था, जो हमारे देश के सर्वनाश का कारण बना। रामायण के समय जिस ईर्ष्या का बीज हम कैकेयी या उस की टहलुई मंथरा के हृदय में देखते हैं, महाभारत-काल में हम उस बीज को वृक्ष का रूप धारण किये हुए धृतराष्ट्र, दुर्योधन, शकुनी आदि के हृदय में पाते हैं। दुर्योधन का कोई विशेष दोष नहीं। उस समय बस जैसे कई राजा—कंस जरासन्ध आदि—इस देश में थे। गिरावट का सब से बड़ा प्रमाण इस बात से मिलता है कि युधिष्टर आदि के प्राण हरण करने के लिये दुर्योधन ऐसे ऐसे साधन प्रयोग में लाया, जो साधारण व्यवहार में भी

बहुत नीचे समझे जाते हो। जुआ खेलने में उस ने कपट से काम लिया। इस से इतना और भी पता लगता है कि उस समय क्षत्रियों में जुआ खेलने का बहुत रिवाज फैल चुका था।

वनवास से लौटने पर पाण्डव केवल पाँच गाँवों का राज्य लेने में ही सन्तुष्ट हो गये थे। पर दुर्योधन एक चप्पा जमीन भी देना न चाहता था। इस से यह प्रकट होता है कि उस समय के राजा एक एक गाँव पर राज्य करना भी अपने राजपद के लिये पर्याप्त समझते थे।

तब ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों ही चारपाई पर लेटे हुए मरना पाप समझते थे। क्षत्रिय के लिये रणक्षेत्र में मरना सीधा स्वर्ग को जाना था। जो क्षत्रिय रण में मर जाता, न उसे वहाँ से लाने की जरूरत थी न और किसी क्रिया कर्म करने की। पाण्डवों को राज्य मिल गया, परन्तु युधिष्ठिर ने मृत्यु के लिये यही उचित समझा कि घर में मरने की अपेक्षा हिमालय में गल कर मरना श्रेष्ठ है। द्रौपदी महाभारत में एक केन्द्र के समान है। परन्तु कृष्ण अकेले ही हैं, जो तत्कालीन गिरावट और अंधकार में सूर्य की तरह हमारे सामने चमकता हुआ दिखाई देता है। एक कृष्ण ही का जीवन महाभारत के सारे काल को हमारे देश और जाति के लिये महान और उज्ज्वल बना देता है।

महात्मा बुद्ध ।

महाभारत के युद्ध में कुरु-क्षेत्र के मैदान पर जाति के सब बड़े बड़े वीर और विद्वान् मारे गये। इस महायुद्ध से कलियुग का आरम्भ होता है। देश और जाति पर अविद्या और अंधकार का परदा छा गया। सारा समाज बिगड़ गया। जन-उत्पत्ति की अधिकता के कारण सार्वजनिक शिक्षा का होना कठिन था, यद्यपि यहाँ पर आचार्यों के आश्रम थे, जहाँ विद्यार्थी जाकर रहा करते थे और गुरु के चरणों में बैठकर विद्या ग्रहण करते थे। पर तब छापा न था। इस लिये पुस्तकें ज्यादा न होती थीं। और पुस्तकों के सुलभ न होने से हर एक आदमी पुस्तकें न खरीद सकता था। और दूसरे पढ़ानेवाले आचार्य भी इतनी अधिक संख्या में न थे। ऐसे समय में जन-संख्या का बढ़ना मानो अविद्या का बढ़ना था। अविद्या से अंधकार फैलता गया और उस से यज्ञ आदि कर्मों में बिगाड़ शुरू हुआ। इस पतित अवस्था में एक महात्मा ने जन्म लिया, जो बुद्ध नाम से मशहूर हैं।

नेपाल की तराई में बस्ती के जिले में कपिलवस्तु के राजा के घर शाक्यमुनि गौतम पैदा हुआ। गौतम अभी छोटा ही था कि अपने चचा के साथ एक बार शिकार को गया। एक जानवर को मरते देख उस की आँखों से आँसू

गिरने लगे। इस बात का उस पर इतना गहरा असर हुआ कि तब से यह जरूरी समझा गया कि उस की शिक्षा का प्रबंध शहर से बाहर किसी खास जगह पर किया जाय। वहाँ कोई दुःखित या बीमार आदमी नहीं जा सकता था। शिक्षा की समाप्ति पर उस का विवाह हो गया।

राजकुमार के रूप में वह एक दिन नगर में घूमने को गया। बाजार में क्या देखता है कि एक बुड्ढा, जो आँखों से अंधा था और जिस के सुफेद बाल बिखरे हुए थे, भीख माँग रहा है। गौतम ने अपने साथियों से पूछा कि यह कौन है। उन में से एक ने कहा कि यह एक भिखारी है, रोग के कारण जिस की आँखें खोई गई हैं। आगे जा रहे थे कि एक कुबड़ा नजर पड़ा, जो लकड़ी के सहारे चल रहा था। इस के बाद एक अरथी दिखाई पड़ी, जिस के साथ बहुत से स्त्री पुरुष रोते आ रहे थे। राजकुमार ने पूछा—"यह क्या है ?" एक साथी ने कहा "कोई आदमी मर गया है। उस की लाश जलाने के लिये ले जा रहे हैं और रोनेवाले उस के बन्धु बान्धव हैं"। बुढ़ापे, बीमारी और मृत्यु के दृश्य देख कर गौतम पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उस के मन में विचार उठा कि यह संसार तो दुःख का सागर है। इस के दुःखों को किसी प्रकार दूर करना चाहिए। गौतम ने संसार को छोड़ने का निश्चय कर लिया। उसी दिन उसके हाँ बच्चा पैदा हुआ था। वह रात को उठा। एक मिनट वहाँ खड़ा सोचता रहा। एक तरफ

जाने से दुनियाँ में फसना था, दूसरी तरफ होने से उस के बंधनों को तोड़कर, स्वतन्त्रता प्राप्त करनी थी । गौतम ने निश्चय कर लिया और अपना क़दम दूसरी ओर रख दिया । उस ने बाहर से ही बच्चे के दर्शन किये, और नौकर को साथ लेकर जङ्गल को चल पड़ा । यह घटना 'महात्याग' कहलाती है । थोड़ी दूर जाकर घोड़ा और सब वस्त्र नौकर के हाथ वापस कर दिये । आप अकेला वनों में फिरने लगा । उसने काशी में कुछ देर तक शिक्षा पाई । तत्पश्चात् तप करता रहा।

कई वर्ष एक ही वृक्ष के नीचे बैठकर बिता दिये । गौतम को भय हुआ कि उसका शरीर और कुछ दिन तक न रह सकेगा। एक बार गाँव की कुछ स्त्रियाँ यह गाती हुई पास से गुज़रीं—इस तांती को मत खेंच टूट कर रह जायगी । गौतम ने इसे अपने लिये समझा । समाधी छोड़ कर उठा । पर बहुत कमजोर होने से बेहोश हो कर नीचे गिर पड़ा । अन्त को उस के अन्तःकरण में यह प्रकाश हुआ कि इस ब्रह्माण्ड में कर्म का नियम काम करता है । यज्ञादि करने निरर्थक हैं । वेदों को केवल पढ़ने पढ़ाने में बहुत लाभ नहीं है । हर एक का धर्म यही है कि वह स्वयं अच्छे काम करे और दूसरों को ऐसा करने के लिये कहे अच्छे कामों के करने का प्रचार करे । मन से इच्छा का त्याग देना ही निर्वाण का साधन है । इस बोध के बाद गौतम का नाम 'बुद्ध' हो गया । बुद्ध का अर्थ है जिसे बोध होगया हो ।

बौद्ध-मत और स्त्रियों का पर्दा।

गौतम बुद्ध ने अपना एक नया मत निकाला और कुछ शिष्य इकट्ठे किये। जैसा कि अन्य मतों के आचार्य उस समय करते थे उसने उन को अपने साथ लेकर जगह जगह घूमना और अपने मत का प्रचार करना शुरू किया। निर्वाण प्राप्त करना बुद्ध के चेले के लिये अपने जीवन का आदर्श था। इस के लिये संसार को छोड़ना आवश्यक था। इस के सामने सब मनुष्य बराबर थे। पुरुष और स्त्री दोनों के लिये यह मार्ग एक सा खुला था। जहाँ पर बुड्ढे और जवान घरबार छोड़कर बुद्ध के साथ हो लिये थे वहाँ पर हज़ारों स्त्रियों ने भी दुनियाँ को त्याग दिया और भिक्षुनियाँ बन गईं।

इसके अतिरिक्त बुद्ध ने जाति-भेद को मिटा दिया। आर्यों ने निर्जित जातियों को अपने अन्दर जज़्ब न करके जाति-भेद पैदा कर दिया था। बुद्ध के समता के सिद्धान्त ने सब लोगों को अपनी ओर खींच लिया। जब प्रचार करते करते बुद्ध अपने जन्म स्थान कपिलवस्तु में आया तब हर एक घर ने एक नौजवान लड़का या लड़की उस के भेंट की। ये भिक्षु जगह जगह बुद्ध-मत का प्रचार करते थे। यहाँ तक कि इन भिक्षुओं की संख्या पाँच हज़ार तक जा पहुँची। स्मरण रखने योग्य बात केवल यही है कि बुद्ध-मत के

अशोक।

सिकन्दर के बाद उसके एक जनरल सिल्यूकस ने, जो यूनानी राजा था, पाटलिपुत्र के सम्राट चन्द्रगुप्त पर चढ़ाई की। पर चन्द्रगुप्त ने उसे परास्त किया। इस पर सील्यूकस ने चन्द्रगुप्त से सन्धि करके उसे अपनी कन्या ब्याह में दे दी। चन्द्रगुप्त का मन्त्री चाणक्य बड़ा नीतिज्ञ हुआ है।

चन्द्रगुप्त का पोता अशोक हुआ। अशोक ने एक ही युद्ध किया, जिस में उस की अनगिनत सेना मारी गई। युद्ध के दृश्य ने उस के मन पर गहरा प्रभाव डाला। इसी कारण यही राजा की पहली और यही उस की अन्तिम लड़ाई हुई। उस ने अपना आदर्श बदल दिया और धार्मिक विजय ही को सच्ची विजय समझने लगा। उस ने बौद्ध मत ग्रहण कर लिया और उस के प्रसार के लिए यत्न करने लगा। उस का अपना लड़का महेन्द्र लङ्का को और लड़की चारुमती नैपाल को धर्मप्रचारक और धर्मप्रचारिका बन कर गए। अशोक के राज्य-काल में बौद्ध-मत समस्त सीमाप्रान्त, ईरान, बिलोचिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान तक फैल चुका था।

वर्तमान रावलपिंडी के पास तक्षशिला एक प्रधान विद्यापीठ थी। यहाँ पर विद्या-अध्ययन के लिये दूर दूर से विद्यार्थी आते थे। अभी हाल में यह नगर ज़मीन से खोद

कर निकाला गया है। यहाँ बौद्धों के बहुत-से मन्दिर और स्तूप भी पाए गए हैं। इसी प्रकार मालापद और पेशावर में ज़मीन खोदने पर हाल ही में बौद्धों के बड़े बड़े मन्दिर निकले हैं।

चीनी यात्री।

इ उत्तर प्रदेश, तिब्बत, चीन और जापान में बौद्ध-मत का प्रचार हुआ। कई चीनी यात्री मार्ग की कठिनाइयों को झेलकर बुद्ध-गया के दर्शन करने के लिए सदियों तक भारत में आते रहे। इन यात्रियों में से फाहियान, ह्यानसांग और इत्सिंग ने भारतवर्ष के वृत्तान्त लिखे हैं। ह्यानसांग अपनी पुस्तक में लिखता है कि इस देश का नाम 'हिन्दु' नहीं प्रत्युत 'इन्दु' है, जिस का अर्थ चाँद है। जैसे चाँद सारे संसार को प्रकाशित कर देता है और तारे निष्प्रभ हो जाते हैं वैसे ही भारतवर्ष ने समस्त संसार को अपना प्रकाश दिया है। इस प्रकाश में अन्य सब देश फीके पड़ रहे हैं।

जब यह मत देशान्तरों में फैल रहा था, उस समय भारतवर्ष में अपने प्राचीन वैदिक धर्म को दुबारा जागृत करने के लिए ब्राह्मणों ने सिरतोड़ कोशिश की। ह्यान्तसांग बताता है कि जहाँ कहीं वह जाता था दोनों दल—बौद्ध

वर्जस्य से शास्त्रार्थ किया था, फिर तुम क्यों पीछे हटते हो ?" शङ्कर शास्त्रार्थ पर राज़ी हो गया। कुछ समय के पश्चात् विद्याधरी ने भी हारकर उस के मत को ग्रहण किया। बाद में मण्डन मिश्र 'सोमेश्वर आचार्य' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और उस ने शङ्कर के काम को बड़ी सफलता से पूर्ण किया।

हिन्दुओं का पुनरुत्थान।

भारत में एक हज़ार वर्ष तक बौद्ध-मत का ज़ोर रहा। हम ने देखा है कि इस काल के पिछले भाग में स्थान २ पर ब्राह्मण लोग अपने पुराने गौरव को लौटाने के यत्न में लगे थे। यह एक प्रकार का शान्तिमय युद्ध था, जिस में एक ओर बौद्ध-मत था और दूसरी ओर नवीन हिन्दू धर्म के नेता ब्राह्मण थे। इस युद्ध का परिणाम बहुत आश्चर्यजनक हुआ। यह बौद्ध मत, जिस का जन्म इस देश में हुआ, जिस ने इस देश में इतना ज़ोर पकड़ा और जो इस देश से चलकर पृथ्वी के दूसरे देशों में फैला, युद्ध की समाप्ति पर अपनी जन्मभूमि से बिलकुल उठ गया।

इस के कई कारण हैं, जिन में से यहाँ दो का लिख देना ही पर्याप्त होगा। पहला आन्तरिक कारण था। यद्यपि बौद्ध

मत की फिलॉसफी और सिद्धान्त अन्य जातियों के लिये बड़े महत्त्वपूर्ण थे, ब्राह्मणों की दृष्टि में उन में किसी प्रकार की नवीनता न थी। क्योंकि उन की फिलॉसफी का स्रोत आर्य दर्शन ही थे। बौद्धों की बड़ी भारी भूल यह थी कि उन्हों ने प्राचीन आर्य संस्कृति से अपना सम्बन्ध तोड़कर एक नई संस्कृति चलाने का प्रयत्न किया। आर्य जाति इसे एक प्रकार की कृतघ्नता समझती थी। उन्हों ने जब यह विचार किया कि उन की प्राचीन संस्कृति में वह सब कुछ है जो बौद्धमत उन्हें सिखाना चाहता है और इस से भी बढ़कर उस में उन के प्राचीन ऋषियों का ज्ञान और वीरों के जीवन-चरित्र पाए जाते हैं, तब उन का चित्त बौद्ध मत से फिरकर अपनी पुरानी संस्कृति में लग गया। इस से उन में नये जीवन का सञ्चार हुआ। यद्यपि यह जीवन प्राचीन जीवन ही था, तथापि इस पर बौद्ध मत के प्रभाव भी पड़ चुके थे।

बौद्ध मत के पतन का दूसरा कारण बाह्य था। जब देश में बौद्ध-मत फैल गया तब इस की शिक्षा में अधिक सार्वदेशिक भाव के होने से जातीय भाव निर्बल और क्षात्र धर्म नष्ट हो गया। जाति की इस निर्बल अवस्था में मध्य एशिया की असभ्य जातियों हूण आदि ने देश पर आक्रमण आरम्भ किये। इधर से कोई भी उन के मुक़ाबले में खड़ा न हुआ इस लिये वे हर बार आगे ही बढ़ते जाते थे। बौद्ध-मत ने तलवार छुड़ाकर लोगों के हाथ में माला दे

दी। यह माला इन असभ्य जातियों की तलवार का मुक़ाबला न कर सकी। बौद्ध-धर्म जाति की रक्षा के लिये अयोग्य सिद्ध हुआ। लोगों की आँखें पुराने क्षत्रिय राजाओं की ओर फिरने लगीं। उज्जैन के विक्रमादित्य के वंश ने इस ज़िम्मेदारी को अनुभव करके जाति की रक्षा का बीड़ा उठाया। इस वंश के एक राजा ने मुलतान के पास करोड़ के मैदान में इन आक्रमण करनेवालों को इतना दबाया, कि उनके आक्रमण की लहर रुक गई। विक्रमादित्य-वंश के राजा पुरानी हिन्दू संस्कृति और भाषा को पुनरुज्जीवित करने में लग गये। इसी काल में प्रसिद्ध नवरत्न हुए-जिन में महा कवि कालिदास भवभूति और आयुर्वेद के पण्डित धन्वन्तरी आदि हुए हैं।

कालिदास और भवभूति के नाटकों और काव्यों से तत्कालीन स्त्रियों की अवस्था का हमें बहुत कुछ ज्ञान होता है। स्त्रियों को समाज में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वे पुरुषों के साथ निःसंकोच भाव से मेल जोल रखतीं और सब सामाजिक व्यवहारों में अपना भाग लेती थीं। पति के पसन्द करने में भी उन की इच्छा प्रबल होती थी।

विक्रमादित्य के नाम से उत्तर भारत में नये हिन्दू सम्वत का आरम्भ होता है। विक्रमादित्य उस समय इतना प्रसिद्ध हुआ कि उस के दान और वीरता के सम्बन्ध में कई कहानियाँ अभी तक लोगों में प्रचलित हैं। उस का नाम

हिन्दूमात्र के प्रत्येक घर में आदर और प्रेम से लिया जाता है। इस एक नाम में ही हिन्दू जाति के पुनरुत्थान की सारी कथा आ जाती है।

हिन्दुओं के पुनरुत्थान के प्रसंग में राजपूतों का भी थोड़ा सा वर्णन कर देना आवश्यक है, क्योंकि उन्हों ने भारतीय इतिहास के निर्माण में बड़ा भारी भाग लिया है। बौद्ध-मत ने हिन्दुओं को अकर्मण्य बना दिया था। इन्हीं राजपूतों ने उनमें क्षात्रबल का सञ्चार करके उन्हें नया जीवन दिया। राजपूतों के सम्बन्ध में पुराणों में कथा पाई जाती है कि आबु पर्वत पर एक बड़ा भारी यज्ञ किया गया। उस यज्ञ-कुण्ड में से नई राजपूत जाति ने जन्म लिया। अग्नि कुल के राजपूत भी उसी में से पैदा हुए। यह इन राजपूतों का ही प्रभाव था कि हिन्दुस्थान के विविध भागों में क्षत्रियों का राज्य हो गया। इस बृहत् परिवर्तन का, जिस में राजपूतों ने न केवल हूण और शकों के आक्रमणों से हिन्दुस्थान को सुरक्षित रक्खा प्रत्युत उस को फिर से शक्तिसम्पन्न और वीर बना दिया। सारांश में जब हिन्दू धर्म ने भारत में अपनी पुरानी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली तब राजपूत वंश के राजाओं ने उत्तरी भारत के अधिकांश भाग पर अधिकार जमा लिया। कन्नौज और दिल्ली उन की बड़ी राजधानियाँ थीं। कुछ भागों में ब्राह्मण भी राज्य करते थे। सिन्ध और लाहौर के राजा ब्राह्मण वंश में से थे। परन्तु इन का प्राबल्य कभी अधिक नहीं हुआ।

बौद्ध धर्म भारत से लुप्त हो गया। शक और हूणों का भी खतरा जाता रहा। हिन्दू धर्म ने और राजपूत जाति के नेतृत्व में अपना सिक्का फिर भारत में जमा लिया। परन्तु हिन्दू अभी अपनी स्थिति दृढ़ ही कर रहे थे कि उन पर एक और नई ताक़त ने ज़बरदस्त हमला किया। यह हमला इस्लाम का था। राजपूत फिर आगे बढ़े और हिन्दू धर्म को यथाशक्ति बचाया। हिन्दू धर्म और इस्लाम का पारस्परिक संग्राम एक हज़ार वर्ष पर्यन्त रहा। यही संग्राम भारत में एक हज़ार वर्ष का इतिहास है।

हिन्दू-जाति के चरित्र पर बौद्ध धर्म का चिरस्थायी प्रभाव।

बौद्ध-मत भारतवर्ष से निकल गया। परन्तु सदा के लिये वह हिन्दू-जाति पर अपना प्रभाव छोड़ गया। यह प्रभाव हमारी जाति के चरित्र का एक ऐसा स्वाभाविक अङ्ग बन गया है कि हम इसे अपने चरित्र से पृथक् नहीं कर सकते।

इस बात के मानने से किसी आदमी को इनकार नहीं हो सकता कि महात्मा बुद्ध एक अति उच्च कोटि का मनुष्य था। सब से पहले उसी के हृदय पर इस बात का बड़ा असर हुआ कि यह संसार दुःख का घर है। उस ने इसे

दुःख को दूर करने का उपाय ढूंढने का यत्न किया । आगे चल कर उस ने देखा कि आर्य धर्म और जाति की अवस्था बहुत पतित है । ब्राह्मण लोग यद्यपि वेदों का रटना जानते थे परन्तु उन का आचरण वेदों की शिक्षा के बिलकुल विरुद्ध था । वर्णाश्रम की जगह जातों का प्रारम्भ हो गया था और आर्य लोग दूसरी जातियों से इतनी घृणा करते थे कि उन्हें शूद्रों से भी नीच समझते थे । इस तरह जाति टुकड़े टुकड़े होने से बड़ी अशान्त अवस्था में ही रहती थी ।

इस में भी कोई सन्देह नहीं कि महात्मा बुद्ध ने देश के सुधार के लिये जो उपाय निकाला वह उस के सच्चे हृदय से निकला था । परन्तु उस में बड़ा भारी दोष यह था कि बजाय इस के कि महात्मा बुद्ध पुरानी संस्थाओं (कॉन्स्टीट्यूशनों) को सुधारते, उनको उखेड़ कर बुद्ध ने उनकी जगह नई संस्थाएं कायम कर दीं । तत्काल तो यह मालूम होता था कि सब बिगाड़ दूर हो कर सुधार का आरम्भ हो गया है । पर जब कुछ काल बीत गया तब पता लगा कि इन नई संस्थाओं में से ऐसी बुराइयाँ पैदा हुईं, जिन्हों ने पुराने बिगाड़ को भी मात कर दिया । हम उस के कुछ उदाहरण लेकर संक्षेप से अपने अभिप्राय को बताना चाहते हैं ।

१। बुद्ध ने मनुष्य के अच्छे कर्मों पर बड़ा ज़ोर दिया उस का यह सिद्धान्त था कि अच्छे कर्म ही सब कुछ हैं और परमात्मा के मानने या न मानने का इस से कोई

सम्बन्ध नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि बुद्ध ने सर्व साधारण में से परमात्मा को परे हटा दिया। परन्तु उन लोगों ने बुद्ध की मूर्ति बना कर परमात्मा की जगह उस की पूजा आरम्भ करदी।

२। जाति में असमता को दूर करने के लिये, बुद्ध ने वर्णाश्रम के तरीके ही को मिटा दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि वर्ण-धर्म मिट जाने से अधिकार का सिद्धान्त भी मिट गया और योग्यता अयोग्यता में कोई भेद न रहा। जहाँ वर्ण-धर्म के अनुसार यह माना जाता था कि मनुष्यों के स्वभाव या प्रकृति में इतना भेद है कि सब के सब न तो त्याग कर सकते हैं और न आत्मिक ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं, और हरएक को उन्नति करने के लिये धर्म-मार्ग की भिन्न भिन्न सीढ़ियों पर चलना जरूरी है, वहाँ बुद्ध ने इन सब सीढ़ियों को हटा कर परे फेंक दिया, और तमावस्था में पड़े हुये शूद्र के सामने और धन के लाभ में फंसे हुए वैश्य के सामने भी वही आदर्श रख दिया, जिस का अधिकार ब्राह्मण या क्षत्रिय का हो सकता था। इस प्रकार की समता बिलकुल ग़लत थी और इस ने ऐसी गड़बड़ पैदा की कि समस्त जाति उलट पलट गई।

३। जहाँ सब लोग निर्वाण अथवा मुक्ति के पात्र न हो सकते थे वहाँ इस में एक और दोष यह था। सब मनुष्यों के सामने केवल निर्वाण ही का आदर्श रखना व्यक्ति-धर्म

को आगे लाकर जातीय धर्म को नष्ट करना था। परिणाम क्या हुआ? ब्राह्मणों ने विद्या-प्रचार अपना कर्त्तव्य न समझा। क्षत्रियों ने देश और जाति की रक्षा छोड़ दी। वैश्य धनोपार्जन छोड़ भिक्षु बनने लगे । तब जाति कैसे जीवित रह सकती थी? महात्मा बुद्ध के अपने जीवन में ही उस के अपने नगर पर शत्रुओं का क़ब्ज़ा हो गया। जब महात्मा बुद्ध को यह खबर मिली तब उस ने इस की कुछ परवा न की। इस का अर्थ यह था कि महात्मा बुद्ध जाति के गुलामी में चले जाने से निर्वाण के मार्ग में कोई रुकावट न देखते थे।

४। अहिंसा ठीक है जहाँ तक कि इसका हमारे व्यक्तित्व से सम्बन्ध है। उसमें नियम यह है कि हम किसी को दुःख न दें। परन्तु इस संसार के अन्दर देवों और असुरों का, पाप और पुण्य का ऐसा घोर संग्राम चल रहा है कि अहिंसा से काम नहीं चल सकता। जहाँ पर एक प्राणी दूसरे प्राणी को, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को, एक जाति दूसरी जाति को हड़प करने के लिये तैयार हो वहाँ अहिंसा क्या कर सकती है? जब मनुष्य उस अवस्था पर पहुँच जायँगे कि उन के स्वभाव देवताओं के समान हो जायँगे तब दुनियाँ में युद्ध का अन्त हो जायगा। परन्तु जैसा कि वर्तमान मनुष्य-समाज है मरती हुई जातियों में जीवन डालने का एकमात्र साधन युद्ध ही है। महात्मा बुद्ध ने अहिंसा का प्रचार कर के संसार से युद्ध का नाम मिटा देने का यत्न किया।

युद्ध और अहिंसा तो दूर न हो सके। बुद्ध के पीछे चलने वाला देश ऐसा निर्बल और निरुत्साही हो गया कि उस के अन्दर क्षात्र धर्म नष्ट हो जाने से मध्य एशिया से नहक हूण आदि जातियों ने आक्रमण करके भारत में ऐसी लूट मार मचाई कि अहिंसा के प्रचार करने वालों को अपनी जान के लाले पड़ गये।

५। बुद्ध का सब से बड़ा सिद्धान्त कर्म का है। इस में भी व्यक्तित्व ही प्रधान पाया जाता है। इस का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक को बचाने के लिये उस के अपने कर्मों का ही आश्रय लेना चाहिये। वैदिक धर्म इस के मुकाबले में मनुष्य के व्यक्तिगत कर्म की बहुत परवा नहीं करता। वर्णाश्रम-धर्मानुसार हरएक पुरुष स्त्री का आदर्श यह होना चाहिये कि वह किस प्रकार अपने जीवन को समाज हित में लगा सकता है। कोई मनुष्य केवल अपने कर्म से बच नहीं सकता और न उस के अपने कर्मों का फल उस तक ही रहता है। जो कुछ एक मनुष्य करता है उसके द्वारा वह अपनी जाति का हित या अहित करता है। एक आदमी देश और जाति के लिये अपने प्राण दे कर सब आनेवाली नसलों के लिये जीवनदाता बन जाता है। दूसरा अपने स्वार्थ और आराम में फँसा हुआ देशद्रोह करके जाति को गुलामी में फँसा कर सदा के लिये उस के धर्म और आचार को नष्ट कर देता है। यदि हम जाति को एक मानें, जिस

बिना हम कोई उन्नति नहीं कर सकते, तो व्यक्तिगत धर्म और उस के फल का सिद्धान्त भी सृष्टि के नियम के विरुद्ध हो जाता है।

इस्लाम से संघर्ष।

इस्लाम मज़हब अरब देश में शुरू हुआ। इस का प्रवर्तक हज़रत मुहम्मद हुआ है। तब अरब में आज़ाद क़बीले रहते थे जो इधर उधर फिरते थे और आपस में लड़ भिड़ कर अपना समय व्यतीत करते थे। हज़रत मुहम्मद ने इन बद्दू क़बीलों के परस्पर के ईर्ष्या-द्वेष के भाव को इस्लाम मज़हब की आग में जला कर उन्हें संगठित करके एक शक्ति बना दिया। दूसरों पर राज्य करने का भाव इस मज़हब में पहले ही से मौजूद था। इस मज़हब की नींव वह विश्वास था, जो लोगों को ईश्वर और उसके दोस्त हज़रत मुहम्मद पर होना चाहिए। हज़रत ने इस मज़हब के चार व्यावहारिक अङ्ग बनाए, जिन पर आचरण करना उसके प्रत्येक अनुयायी के लिए आवश्यक था—निमाज़ पढ़ना, रोज़ा (व्रत) रखना, आमदनी का दसवाँ हिस्सा ख़ैरात में देना और हज अथवा काबा की यात्रा करना।

थोड़े ही काल में हज़रत को निश्चय हो गया, कि मज़हब

को फैलाने के लिए उसे विरोधियों का मुक़ाबला करना पड़ेगा। इसलिए अपने अनुयायियों में युद्ध का भाव फूँकने के लिए हज़रत ने अपने मजहब में जिहाद (मज़हबी युद्ध) का पाँचवाँ अङ्ग बढ़ा दिया। इस का मतलब यह था कि मजहबी युद्ध में हिस्सा लेना हरएक मुसलमान का कर्त्तव्य है और यह धर्म अन्य सब कर्त्तव्यों से ऊपर है। इस के साथ हज़रत का यह भी कहना था कि ऐसी लड़ाइयों में मुसलमानों को जो घाव लगेंगे क़यामत के दिन वे ईश्वर की ज्योति से चमकेंगे और उन से इतर के सुगंध निकलेगी।

इस प्रकार बद्दू क़बीलों को इकट्ठा कर के मुहम्मद साहब ने उसे एक सैनिक शक्ति का रूप दिया। उसने पहले अरब पर अपना कब्ज़ा जमाया। फिर वहाँ से सीरिया आदि देशों पर आक्रमण आरम्भ किए। इस सैनिक शक्ति के दो विभाग करके हजरत ने एक को पश्चिम और दूसरे को पूर्व की ओर रवाना किया। पहले ने तो अफ्रिका के किनारे किनारे मिस्र से होते हुए योरप पर आक्रमण किया। स्पेन को जीतकर मुसलमानों ने वहाँ सात सौ वर्ष तक राज्य किया। और यदि फ्रांस की राजधानी पेरिस के बचाने के लिए योरप की सेनाएँ एकट्ठी न होतीं और यदि मुसलमानों में परस्पर फूट न पड़ जाती तो आज शायद सारे योरप पर इस्लामी झण्डा फहराता।

इसी शक्ति का दूसरा विभाग ईरान, अफगानिस्तान

आदि को अपने अपने तले लाता हुआ अर्थात् मुसलमान बनाता हुआ भारत पर चढ़ आया। परन्तु इससे पूर्व ही एक आक्रमण सिंध प्रदेश पर समुद्र से हुआ था, जिस कारण मुसलमानी राज्य कुछ काल के लिए वहाँ रहा था। अब दूसरी बार खलीफा की आज्ञा से अबुलकासिम ने सेना लेकर सिंध पर आक्रमण किया। सिंध पर राजा दाहर राज्य करता था। राजा दाहर ने युद्ध में बड़ी बहादुरी दिखाई। पर मुसलमानों की तरह ताज़ा जोश और नवजीवन न होने से उस की सेना के पाँव उखड़ने लगे और वह हारने लगी। रानी और अन्य स्त्रियों ने पुरुषोंके वस्त्र धारण किये और कटारें हाथ में लेकर लड़ने के लिए मैदान में उतरीं। बावजूद इसके कि सिंध की स्त्रियों ने अपने देश और जाति के लिए इतना शौर्य और वीरता दिखाई, सिंधी फ़ौज अबुलक़ासिम का मुक़ाबला न कर सकी। विदेशी सिंध का मालिक बन गया। मुसलमान सेनापति ने राजा की दो लड़कियाँ खलीफा के पास उपहार स्वरूप भेजीं। खलीफा के यहाँ पहुँचने पर ये राज पुत्रियाँ फूट फूटकर रोने लगीं। खलीफा ने इस का कारण पूँछा। उन्होंने कहा कि "अबुलकासिम ने यहाँ आने से पहले ही हमारे सतीत्व को नष्ट कर दिया है"। इस पर खलीफा को बड़ा गुस्सा आया और उस ने आज्ञा दी कि अबुलक़ासिम को क़त्ल करके उसकी खाल में भूसा भरकर वापस भेजा जावे। राज पुत्रियों ने जब अपनी आँखों के सामने अपने पिता

और वंश के शत्रु के मृतक को देखा तब यह कहा- "हमारा जी ठँडा हो गया है। पर हम ने जो कुछ किया है अपने पिता का बदला लेने के लिए किया है।" ये शब्द कहकर उन्हों ने अपने आप को तलवार के हवाले कर दिया और वीर-गति को प्राप्त हुई।

लगभग डेढ़ सौ साल और गुजार गए कि अफ़ग़ानिस्तान की ओर से सीमाप्रान्त के रास्ते भारतवर्ष पर आक्रमण आरम्भ हुए। तब वहाँ पठानी-वंश का राज्य था। लाहौर का राजा जयपाल पहला था, जिस ने अफ़ग़ानिस्तान पर आक्रमण किया। उधर से सुबुक्तगीन मुकाबले के लिए आया। पंजाबी सेना बरफानी पहाड़ों में युद्ध करने के आदी न थी। इसलिए सरदी और बरफ़ पड़ने पर वह घबरा गई। अफ़ग़ानी शासक को कुछ रुपया देने का वचन करके राजा अपनी सेना सहित वापस लौट आया। वापसी पर जयपाल ने अपने मन्त्रियों से सलाह की और वह तावान भेजने से इनकार कर दिया। इस पर सुबुक्तगीन को बहुत गुस्सा आया और वह फौज लेकर पंजाब पर चढ़ आया। राजा हार गया। उसे अब पता लगा कि अफ़ग़ानिस्तान के लोग युद्ध में अधिक बहादुर होते हैं। हार खाने के बाद राजा जयपाल ने अपने आप को राज-पद के योग्य न समझ कर सब राज-काज अपने पुत्र को दे दिया, और आप चिता में जल कर मर गया।

सुबुक्तगीन के पश्चात् उस का पुत्र महमूद बादशाह बना, खलीफा ने उसे भारत पर आक्रमण करने और वहाँ पर इस्लाम फैलाने के लिए पत्र लिखा। महमूद को स्वयं भी आक्रमण करने का शौक़ था। उस ने भारतवर्ष के प्रसिद्ध और पवित्र स्थानों पर १७ आक्रमण किए। एक आक्रमण लाहौर पर हुआ। इस युद्ध में स्त्रियों ने अपने भूषणों से अपने सिपाहियों की सहायता की और चरखा कात कात कर देश-रक्षा के लिए धन जमा किया।

महमूद के शेष आक्रमण कश्मीर, काँगड़ा, मथुरा, सोमनाथ आदि पर हुए, जिन से यह ज्ञात होता है कि तब देश के राजाओं में आत्म-रक्षा के लिए इकट्ठा होना नहीं पाया जाता था और न कोई ऐसी गवर्नमेंट थी, जो इस उद्देश्य के लिये सब को अपने तले इकट्ठा करती। आक्रमणकारी बिना किसी रोक-टोक के सैकड़ों हजारों कोस भारत में चला आता था, अपनी सेना और घोड़ों आदि के लिए राह में उसे रसद भी मिल जाती थी। जब एक शहर पर चढ़ाई होती तब पड़ोसी शहर यह समझ कर भी उस की मदद न करते थे कि अगली बारी उन की है।

इस आक्रमण-काल में महमूद ने भारतीय नगरों में बड़ी तबाही मचाई। मन्दिरों और उन की मूर्त्तियों को तोड़-फोड़ डाला। स्त्रियों तथा बच्चों को दास बना लिया और बहुत से लोगों को मुसलमान बनाया। कई ब्राह्मण अपनी

पुस्तकें साथ लेकर कश्मीर आदि दूर स्थानों में चले गए ताकि किसी प्रकार उन की रक्षा कर सकें।

इन सब घटनाओं की साक्षी पलबेरुनी की पुस्तक 'पलबेरुनी का भारत' है। पलबेरुनी महमूद के साथ शाही क़ैदी के रूप में रहता था, और इसी रूप में वह भारत में आया। अपनी पुस्तक में इस ने तत्कालीन भारत का बड़ा अच्छा चित्र खींचा है। वह लिखता है कि हिन्दू उन लोगों का सामाजिक बहिष्कार कर देते हैं, जो निज धर्म त्याग कर विरोधियों में जा मिलते हैं। हिन्दुओं का उन से रोटी बेटी का कोई संबध नहीं रहता। वे उन की छाया के पास से गुज़रना भी पाप समझते हैं।

विदेशी आक्रमणकारी कुँवारी हिन्दू लड़कियों का जबरदस्ती अपने साथ ले जाना नेकी समझते थे। इस से बचने के लिए हिन्दुओं ने बाल-विवाह करने शुरू किए। इसी निन्द्य प्रथा का परिणाम आज हम देख रहे हैं कि हिन्दू-समाज में अनेकों विधवाएँ भटक रही हैं और इसी कारण वे विधर्मियों के चंगुल में फँस जाती हैं। उस अशान्ति और भयानक अवस्था में ही जब कि हरएक को अपने जान-माल का डर था स्त्रियों में 'परदा' जारी हुआ। तीसरी बात जात पात की वृद्धि थी। अपने आप को सुरक्षित रखने के लिए लोग एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर चले जाते थे। तब अपने पुराने स्थानों और पूर्वजों को

स्मरण रखने के लिए वे अपने आपको भिन्न भिन्न नामों से परिचय देने लगे। इस से देश के अन्दर बहुत सी उप जातियाँ बन गईं, बढ़ते बढ़ते जिन की सख्या अब लाखों तक पहुँच गई है। तब भिन्न भिन्न व्यवसायवालों ने अपने लिए भिन्न भिन्न उप जातियाँ नियत कर लीं।

पृथ्वीराज।

इसी अवस्था में लगभग दो सौ वर्ष बीत गये। उधर गजनी के राज्य में परिवर्तन हो गया। गोर के सरदारों ने गजनी पर अधिकार जमा लिया। इधर भारतवर्ष में यह शताब्दियाँ ज्यों की त्यों ही व्यतीत हो गई। यहाँ के राज्याधिकारियों और नीतिज्ञों ने पिछले आक्रमणों की आपत्तियों से न तो कोई शिक्षा ग्रहण की और न कोई ऐसा प्रयत्न ही किया, जिस से यदि देश पर वसी आपत्ति फिर आवे तो आत्म-रक्षा कर सकें। आपत्ति के पड़ने पर उस से बचने का उपाय सोचना ऐसी ही नीच कोटि की नीति है जैसे प्यास लगने पर कुआ खोदना। नीतिमान पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह पहल आनेवाली घटनाओं को देखे और फिर सब तरह की आपत्तियों का सामना करने के लिये अपने आप को तैयार रक्खे। तब दुर्देव से भारत में कोई ऐसा नीतिज्ञ न था और

जब दो सौ वर्ष के पश्चात् फिर आक्रमण होने लगे तब भी देश वैसी ही दीनता की दशा में पड़ा था। कैसी विचित्र बात है!

उस समय दिल्ली का राजा अनङ्गपाल था। उस की दो लड़कियाँ थीं। एक कन्नौज और दूसरी अजमेर में व्याही गई। अजमेर का राजा पृथ्वीराज चौहान था और कन्नौज का राजा जयचन्द्र राठौर। वृद्ध होने पर अनङ्गपाल ने दिल्ली के राज्य का अधिकार पृथ्वीराज को दिया। जयचन्द्र उस के साथ वैरभाव रखने लगा। एक और कारण भी था। राजा जयचन्द्र ने अपनी लड़की के लिये स्वयंवर रचा। राजा की लड़की संयुक्ता पृथ्वीराज को दिल से चाहती थी। स्वयंवर के दिन वह कुछ दूरी पर ठहरा हुआ था। स्वयंवर के फाटक पर पृथ्वीराज की मूर्त्ति बना कर द्वारपाल के तौर पर खड़ी की गई थी। लड़की ने जयमाला उस मूर्त्ति के गले में डाल दी। इस पर पृथ्वीराज वहाँ आ उपस्थित हुआ और लड़की को घोड़े पर बिठा कर भाग गया।

जयचन्द्र इसे अपना तिरस्कार समझ कर और भी जलने लगा। उस ने गोरी बादशाह को बुलवा भेजा। मुहम्मद गोरी का भाई शहाबुद्दीन फौज लेकर दिल्ली पर चढ़ आया। पृथ्वीराज ने उसे लड़ाई में पराजित किया। सरदार गोविन्दराय की चोट ने ऐसा काम किया, कि यदि

गोरी, का एक सरदार उसे सँभाल कर रणक्षेत्र से लेकर भाग न जाता तो वह वहीं मर जाता। लौटने पर शहाबुद्दीन ने अपने सरदारों को लज्जित करने के लिये उन के मुहँ के साथ तोबरे बँधवाये। इसका अर्थ लोगों को यह जताना था। कि वे मनुष्य नहीं हैं, गधे हैं जो इस प्रकार मैदान से भाग आये हैं।

शहाबुद्दीन ने फिर आक्रमण किया। पृथ्वीराज के झंडे के नीचे पानीपत के मैदान में एक सौ से अधिक राजा एकत्रित हुए। उन्हों ने शहाबुद्दीन से कहा कि अगर तुम इस बार पराजित हो गये तो अब की बच कर न जाओगे। इस पर शहाबुद्दीन ने एक चालाकी खेली। उस ने पृथ्वीराज से कहा कि "मैं अपने भाई बादशाह को लिखता हूँ। अगर वह आज्ञा देगा तो मैं वापस चला जाऊँगा"। राजपूत बेपरवा होकर मज़े करने लगे। गोरी ने एक रात अकस्मात् छापा मार कर राजपूतों का वध करना आरम्भ किया। राजपूतों में हलचल मच गई और पृथ्वीराज पकड़ा गया।

अपने एक गुलाम कुतबुद्दीन को दिल्ली का अधिकार कर शहाबुद्दीन वापस गज़नी चला गया। दिल्ली में मुसलमानों का राज्य शुरू हुआ। पहला वंश जो दिल्ली पर राज्य करने लगा गुलाम वंश था। उस के बाद दिल्ली पर इन वंशों ने शासन किया—खिलजी, तुगलक,

सैयद, लोधी आदि। एक एक वंश के कई कई बादशाह हुए। जब कभी कोई सेनापति या सूबे का अधिकारी अधिक बलवान् हो जाता था तब वह दिल्ली के तख्त पर अधिकार कर लेता था और एक नये वंश की नीव डाल देता था। यद्यपि यह सब बादशाह भारतवर्ष पर राज्य करने वाले कहे जाते हैं तथापि इन का राज्य क्षेत्र दिल्ली नगर ही होता था। दिल्ली से थोड़ी दूरी पर के लोग भी इन्हें न जानते थे।

अफ्रिका का यात्री इबनबतूता, तुगलक वंश के समय दिल्ली में आया। वह कई साल तक यहाँ रहा। वह लिखता है कि "बादशाह के राज्य की सीमा अत्यन्त परिमित थी। जब कभी इन बादशाहों को धन की आवश्यकता पड़ती थी तभी वे अन्य रियासतों पर आक्रमण करते थे, और धन आदि लेकर वापस चले जाते थे। कई बार ये दूसरे नगरों को विजय करके वहाँ पर अपना नायक नियुक्त कर देते थे। पञ्जाब, गुजरात और बङ्गाल इसी प्रकार इन के राज्य में आ गये थे। कभी कभी तो यह किसी स्त्री के सौन्दर्य्य की धाक सुन कर आक्रमण के लिये उद्यत हो जाते थे।"

हिन्दू रियासतों के राजाओं को लूट-मार बचने अथवा स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा के हेतु मुसलमानों का सामना करना पड़ता था। इसी में इस का इतिहास है। इन वंशों के वृत्तान्त का वर्णन, सा[illegible] इतिहास से इतना ही संबंध रखता है, जितना, पानीपत

ऊपर के तेल से।

यद्यपि हिन्दुओं की रानियों में कई पतित और घृणित उदाहरण भी मिलते हैं, जैसे देवलदेवी जिस ने अपने पति और वंश के शत्रुओं के साथ रहना और कुछ समय के अनन्तर विवाह करना भी स्वीकार कर लिया। तथापि जो राजपूत नारियाँ इस समय भी देश में पूजी जाती हैं, उनका उल्लेख करते समय पद्मिनी का नाम चोटी पर आता है। इस प्रात स्मरणीया देवी ने सहस्रों सहेलियों सहित जलती चिता पर चढ़ जाना स्वीकार किया पर अपने कुल जाति और देश के नाम को कलङ्कित नहीं किया।

विक्रमी तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में चित्तौर की गद्दी पर राजा लछमण बालक था। उस का चचा भीमसी उस के नाम पर राज्य करता था। अलाउद्दीन दिल्ली में खिलजी-वंश का हाकिम था। भीमसी की पत्नी पद्मिनी रूप लावण्य में अद्वितीय थी। अलाउद्दीन ने भी उस के सौन्दर्य की बातें सुनीं। दिल में आई कि मैं उसे अपनी रानी बनाऊँ, फौज लेकर वह चित्तौर पर चढ़ आया। युद्ध में भीमसी ने धैर्य और शौर्य का परिचय दिया। जब अलाउद्दीन से कुछ न बन पड़ा तब उस ने एक चाल चली। राजा को संदेशा भेजा कि यदि पद्मिनी का मुख मुझे एक बार दिखा दिया जाय तो मैं फ़ौज लौटा ले जाऊँगा। भीमसी ने अपनी पत्नी के मुख का प्रतिबिम्ब दर्पण में दिखाना स्वीकार किया। इस

"पर भी राजपूत अपना अपमान समझते रहे। अलाउद्दीन क़िले के अन्दर गया और दर्पण में पद्मिनी की छाया देख कर वापस चला आया। भीम उस के साथ हो लिया। नीचे उतरते ही भीम को पकड़ लिया गया। बादशाह ने राजपूतों को सन्देश भेजा कि जब तक पद्मिनी बादशाह के तम्बू में न आवेगी तब तक उस के पिता का छुटकारा असम्भव है। बहुत सोच विचार के अनन्तर राजपूत राजी हो गये। परन्तु पालकियों में पद्मिनी की सहेलियों के स्थान में राजपूत सिपाही बैठे। सिपाही ही पालकियों को कन्धों पर उठा कर अलाउद्दीन के डेरे पर पहुँचे। वहाँ जाते ही बादशाह से कहा गया कि भीम को पद्मिनी के साथ बातचीत करने की अनुमति दी जाय। बड़ी मुशकिल से भीमसी को इजाजत मिली। इस पर राजपूत सिपाही भेस उतार कर बादशाह के मुक़ाबले पर जा डटे। भीमसी घोड़े पर सवार होकर क़िले में जा पहुँचा। पाँच हजार राजपूत लड़ कर ढेर हो गये। उनका सरदार गोरासिंह था। गोरासिंह की पत्नी अपने पुत्र को कहने लगी कि 'हे पुत्र, तुम अपने पिता का अनुकरण करना और मेरी आत्मा को शान्ति देना।" यह कहकर वह सती हो गई।

अलाउद्दीन निराश और खिन्न चित्त से दिल्ली वापस चला गया। परन्तु उस ने फिर और सेना एकत्रित करके चित्तौर को आ घेरा। राजपूतों ने बड़ी बहादुरी से सामना

किया । एक एक करके राजा के ग्यारह पुत्र काम आए। अब राजा ने 'जौहर' की आज्ञा दी । राजपूत केसरी बाना पहन कर मरने के लिये उद्यत हो गये। क़िले में एक बड़ी ऊँची चिता तैयार की गई। उस पर सहस्रों देवियाँ बैठ गईं। सुन्दर पद्मिनी हँसती हँसती उन के मध्य में जा बैठी। दोनों ओर से द्वार बन्द थे । चिता को आग लगा दी गई। इधर जलती हुई अग्नि उन कोमल अङ्गोंवाली देवियों की अस्थियों को जला कर चित्तौर की भूमि को पवित्र कर रही थी,उधर राजपूत क्रोध की दावानल-ज्वाला से उत्तेजित हुए तलवारें हाथों में लेकर शत्रुदल पर टूट पड़े । उन्हों ने सहस्रों को मारा और स्वय भी एक एक करके चित्तौर की मान रक्षा के हेतु बलिदान हो गए। अलाउद्दीन चित्तौर के किले के अन्दर गया, पर सिवा लज्जित होने के उसे कुछ हाथ न लगा और निराशा में दिल्ली वापस चला गया।

रानी कर्णावती ।

दिल्ली में राज्य करने वाले वंशों में से अन्तिम वंश लोधी था । उस का आखिरी बादशाह इब्राहीम था । वह बिलकुल निर्बल, निस्तेज और निकम्मा था। दैवयोग से ऐसा हुआ कि उस समय चित्तौर की गद्दी पर एक ऐसा वीर पुरुष शासन

करता था जो अपनी शूरता में अद्वितीय था। उस का नाम सङ्ग्राम सिंह था। उसे राणा सांगा भी कहा जाता है। उस के दो भाई थे। भाइयों की ईर्षा और द्वेष से उस का बाल्यकाल देश निर्वासन में गुज़रा। अपने भाई पृथ्वी के साथ लड़ाई में उस की एक आँख फूट गई, इब्राहीम लोधी के साथ लड़ाई में एक हाथ निकम्मा हो गया और तोप के गोले से एक टाँग भी टूट गई। उस के शरीर पर अस्सी से अधिक गोलियों और तलवारों के घावों के निशान मौजूद थे। उस ने गुजरात के शासक मुज़फ्फर को क़ैद कर लिया था और राजपूताने की सब रियासतों को अपने तले किया हुआ था। राणा सांगा को आशा थी कि वह एक बार पुन दिल्ली का राज्य राजपूतों के शासन तले ले आयगा। उधर अफ़ग़ानिस्तान के राज्य की बागडोर बाबर के हाथ में आ गई। बाबर तैमूर की सन्तति में से था, जिस ने तेरहवीं शताब्दि में दिल्ली में बड़ी लूट-मार मचाई थी। बाबर के दिल में भी दिल्ली पर चढ़ाई करने की इच्छा थी। राणा सांगा ने उसे आक्रमण करनेके लिये प्रेरित किया। उस का ख़याल था कि दो शत्रुओं के युद्ध के समय वह दिल्ली पर अपनी सत्ता जमा लेगा। पर बाबर सेना लेकर आया और इब्राहीम लोधी को पराजित कर ही चुका था कि राणा सांगा उसके मुक़ाबले पर आ खड़ा हुआ। बाबर घबरा गया। उस ने शराब के प्याले तोड़ दिये और सुरापान न करने की शपथ की। काफ़िर सांगा के

धोखे से वह बड़ा चकित था। पर उस की हिम्मत और राजपूत सरदारों के विश्वासघात ने उस के भाग्य का उदय कर दिया। राणा सांगा के हरावल सरदार को उस ने अपने साथ मिला लिया। वह लड़ाई के मैदान में उतरा, पर फिर वहाँ से भाग निकला। राजपूत सेना पीछे हट गई। और राणा वापस आकर फिर बाबर के साथ युद्ध करने की तैयारी करने लगा। परन्तु उस के सरदारों ने, जो उस की युद्ध नीति से तंग आये हुए थे, उसे विष देकर मार दिया। यदि वह जीवित रहता तो फिर बाबर का मुक़ाबला करता।

पन्द्रहवीं सदी के अन्त में वह कोह ए नूर हीरा, जो पृथ्वीराज से मुसलमान राजाओं के हाथ में चला गया था, अब इब्राहीम लोधी से बाबर के हाथ आया और वह दिल्ली का बादशाह बन गया। थोड़े ही साल जीकर बाबर मर गया और उस का पुत्र हुमायू सिंहासन पर बैठा। उधर राणा की मृत्यु पर उस के सरदारों में झगड़ा हो गया। उस के पुत्र रत्न और विक्रमाजित के दो परस्पर विरोधी दल थे। रानी कर्णावती का पुत्र उदयसिंह अभी छः वर्ष का बच्चा था। आन्तरिक द्वेष और दुर्बलता की यह अवस्था देख गुजरात के हाकिम बहादुर ने अपने पिता का बदला लेने के लिये चित्तौर पर चढ़ाई की। उस समय रानी कर्णावती ने क़िले की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। रानी का साहस देख कर लज्जा और अपमान के भय से सहस्रों राजपूत इकट्ठे हो गए। कई महीनों

तक चित्तौर की चारों ओर गुजरात की सेना का घेरा रहा। शत्रु की एक सुरङ्ग से किले की दीवार उड़ गई। लोगों ने अधीनता स्वीकार करने का विचार किया। कर्णावती की आँखें लाल हो गईं। वह बोली: "वीरो, राजपूतानियों की छाती से दूध पीनेवाले कभी ऐसी बातें नहीं करते।" किले के खुलने में थोड़े ही दिन थे कि राखी का त्योहार आ गया। रानी ने हुमायूं को अपना भाई कह कर उसे एक राखड़ी भेजी। हुमायूं बङ्गाल में था। वह उस से कब इनकार कर सकता था। उस ने राखी स्वीकार की और शेरशाह के साथ लड़ाई छोड़ कर चित्तौर को चल पड़ा। पर वह समय पर न पहुँच सका। जब उधर से रानी निराश हो गई तब उन ने सब सरदारों को बुलाया और कहा—"सिंहपुत्रो और शूरवीरो, राजपूतों के नाम को कलङ्कित मत करो। खड्ग हाथ में लो और शत्रुओं का संहार करते हुए प्राण त्याग दो।" सरदी से रोते हुए बच्चे उदयसिंह को छीन कर बूँदी भेज दिया गया ताकि गद्दी का उत्तराधिकारी बचा रहे। बहादुर राजपूत केसरी बाना धारण कर रणक्षेत्र में उस काम के लिये निकले, जिस के लिये उन्हें माता ने जन्म दिया था। तेरह हज़ार राजपूत देवियाँ अपनी रानी का उत्साहजनक उपदेश सुनती हुई एक विशाल चिता पर चढ़ गईं। तत्पश्चात् रानी स्वयं उस अत्यन्त स्तब्ध और शान्त अवस्था में चिता पर मानों सितारों के बीच में चाँद है। इतने में सुलगती आग से

धुआँ बढने लगा और थोड़ी देर में अग्निज्वाला चमकने लगी। बहादुर सुलतान यह दशा देखकर दंग रह गया। जब क़िले के अन्दर प्रवेश किया तब उस ने वहाँ कुछ और ही पाया और अन्त में हताश हो कर लौट गया।

प्रताप।

हुमायूँ यों तो नेक था, पर बड़ा आलसी, निष्क्रिय और आराम पसन्द। उस के सरदार उस से विमुख ही रहते थे। तब बङ्गाल का सरदार शेरशाह उससे लड़ाई कर रहा था, जब हुमायू को चित्तौर की ओर जाना पड़ा। इधर शेरशाह का बल और बढ़ गया। जब हुमायू फिर शेरशाह की ओर गया तब इधर गुजरात का सुलतान बहादुर और बहुत सा प्रदेश दबा बैठा। विवश होकर हुमायू को शेरशाह से समझौता करना पड़ा। धोखा दे कर रात्रि के समय शेरशाह ने शाही फौज को मरवा डाला। हुमायूँ को वहाँ से भागना पड़ा, और भागते हुए उस ने अपना घोड़ा गङ्गा में डाल दिया। नदी के प्रवाह से एक भिश्ती ने उसे बचा लिया। हुमायू सिन्ध के रेतले स्थलों से गुज़र कर भागता हुआ ईरान पहुँचा। मार्ग में अमरकोट क़िले में उस की बेगम के लड़का हुआ। हुमायूँ १५ वर्ष के बाद ईरानी फौज लेकर भारत आया। इतने में

शेरशाह मर चुका था। उसके पुत्र और पौत्र राज्य सँभाल ने के अयोग्य थे। हुमायू ने फिर दिल्ली का राज्य वापस ले लिया। थोड़े ही दिन पश्चात् हुमायूं मकान से गिर कर मर गया और उस का पुत्र अकबर सिंहासन पर बैठा। तीन वर्ष के भीतर ही अकबर ने अपनी योग्यता और स्वतन्त्र प्रकृति का पूरा परिचय दे दिया।

अकबर ने मालवा पर चढ़ाई की। मालवा के शासक ने आश्रय लिया चित्तौर में आकर। उस से क्रोधित हो कर अकबर ने चित्तौर पर धावा बोल दिया। चित्तौर की अव स्था तब बड़ी शोचनीय थी। उस का शासक राणा उदयसिंह शूर माता पिता के पुत्र होने पर भी कायर, भीरु और अयोग्य था, तो भी चित्तौर का राजा बनाया गया। उस के एक चचा बनवीर ने उसे मरवा देने का षड्यन्त्र रचा। बच्चा सोया पड़ा था। उस की दाया पन्ना ने उसे उठा कर छिपा लिया। इतने में प्राण घातक तलवारें लेकर आ पहुँचे। उन्हों ने पन्ना से पूछा "उदयसिंह कहाँ है?" एक क्षण पन्ना खड़ी सोचती रही कि क्या उत्तर दूं। उसका अपना नन्हासा बच्चा सो रहा था। माता के लिये अपने प्राण दे देना तो आसान होता है परन्तु दूसरे के लिए अपने पुत्र को तलवार से कटवा देना दुनियाँ में कभी नहीं सुना गया। पन्ना के लिये दो बातें थीं—या तो वह अपने राणा के बेटे उदयसिंह को क़तल करवाती या इस के स्थान में अपने बच्चे का बलिदान करती। पन्ना ने अपने

कलेजे पर पत्थर रख लिया और अपने बच्चे की तरफ इशारा कर के कातिलों से कहा 'वह है उदयसिंह' । माँ ने बच्चे के टुकड़े टुकड़े होते देखा पर आँखों में आँसू न लाई । पन्ना का आत्म-त्याग और स्वामी-भक्ति इतिहास में अद्वितीय है। अकबर की सेना सिर पर आ पहुँची । वह अपने भोग विलास में पड़ा रहा। उसकी रक्खी हुई एक औरत जवाहर बाई ने लड़ाई के हथियार पहन लिये और बड़ी वीरता और साहस से लड़ती रही । राणा ने उसकी प्रशंसा की और राजपूतों ने ईर्ष्या से उसे मरवा डाला।

अन्तत अकबर की सेना दुर्ग की खाई तक बढ़ आई । राणा वहाँ नहीं था । उस की जगह पर दो सरदार निकले, जिन्होंने सेना के नेतृत्व का भार अपने ऊपर लिया । पहले तो सरदार जयमल आगे बढ़ा और तोप से मारा गया लेकिन स्थान न छोड़ा । उसके अनन्तर चन्द्रावत सरदार के मर जाने पर फतहसिंह (फत्ता) की बारी आई, और वह महल की रक्षा करने लगा । फत्ता की आयु अभी १६ वर्ष की थी । फत्ताने अपना स्थान लिया । उसकी माता नगर में थी । उसे चिन्ता थी कि फत्ता अपनी नव-विवाहिता वधू के प्रेम में कहीं अपने क्षात्र धर्म को न भूल जाय । उसकी माता और वधू ने युद्ध का कवच पहन लिया और हाथ में कटार ली। दोनों रणक्षेत्र में आ घुसीं और जान पर खेल गईं। दूसरी रानियों और राजकुमारियों ने अपना पुराना जौहर

दिखाया, चिता पर बैठ कर भस्म हो गई। १६२५ विक्रमी में अकबर चित्तौर में प्रविष्ट हुआ। समस्त राजस्थान की महारानी स्वरूप "चित्तौर" मानो उस समय अपने स्वामी को खोकर "विधवा" हो गई थी। उदयसिंह ने वहाँ से भाग कर नया शहर उदयपुर का बसाया।

मुसलमान राजाओं में अकबर पहला था, जिसने आप अनपढ़ होने पर भी उत्तरी भारत में राज्य का नवयुग आरम्भ किया। उसके दिल में न विदेशीय होने का भाव था, और न मजहबी पक्षपात। एक भारतीय होने के कारण उसने शासन की एक नई विधि निकाली, जो सम्प्रदायों और मतमतान्तरों के झगड़ों से पृथक् थी। उसके महल में हिन्दू शैली पर ईश्वर पूजा अथवा मूर्ति पूजा की जाती थी। यह स्वयं एक नये ही धर्म का मानने वाला था। हिन्दू राजाओं से वह विवाह का सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। अम्बर (जयपुर) के राजा ने सब से पहले उस के अभिप्राय को पूरा किया। आर्थिक दृष्टि से गौ को बड़ा उपकारी और लाभकारी जानकर उस ने गो वध को राज्य नियम द्वारा बन्द कर दिया। राजपूत तर्ज और शूरता का तथा हिन्दू राजनीतिज्ञों का वह मान और सत्कार करता था। पंजाब के खत्री राजा टोडरमल को उसने एक ऊँचा पद दिया। टोडरमल अपने समय का अद्वितीय बुद्धिमान् था। उस से पहले कोष में कोई स्थिर आमदनी साधन

था, इसी कारण सेना अधिक संख्या में न रक्खी जा सकती थी। टोडरमल ने मालगुजारी का नया ढँग निकाला। सारी भूमि का माप करके उस पर लगान लगाया गया। हर गाँव से लगान वसूल करके सरकारी कोष में दाखिल किया जाता था और सैकड़े का कुछ भाग उसमें से उस महकमे के अधिकारियों को मिलता था। इस मालगुजारी के नियम से अकबर के राज्य का सिक्का गाँव गाँव में जम गया। समस्त देश के एक शृङ्खला में बँधे जाने से राज्य की नींव पक्की हो गई। उस समय भारत का एक बड़ा हिस्सा एक गवर्नमेण्ट की जञ्जीरों से जकड़ा गया। उस से पहले देश में न एक गवर्नमेण्ट था और न एक राज्य प्रबन्ध। यही देश की निर्बलता का कारण था। इसी लिये यह देश विदेशियों के हमलों का शिकार बना रहा।

यद्यपि मुसलमानों के आक्रमण काल में अकबर सचमुच राज्य का एक योग्य बादशाह था, तथापि यदि हम उसे हिन्दू दृष्टिकोण से देखें तो हमारे अन्दर उस के लिए आदर का भाव कम हो जाता है। एक बड़ा उच्च राजनैतिक आदर्श सामने रखता हुआ भी वह स्वभावतः यह चाहता था, कि सब पुराने राज्य उस के महत्व को अङ्गीकार कर लें। परन्तु हिन्दुओं की ओर राजपूतों का सरदार उदयपुर का राणा था, जिस ने अभी तक किसी के सामने अपना सिर न झुकाया था। चित्तौर छोड़ने के कुछ वर्ष बाद उदयसिंह की

मृत्यु हो गई। उस की जगह उस का पुत्र राणा प्रतापसिंह राजसिंहासन पर बैठा।

प्रताप कहा करता था कि, "अच्छा होता, यदि मेरे और मेरे दादाके बीच में मेरा पिता न होता।" इस दौर्बल्य की दशा में दूसरी राजपूत रियासतें अकबर की सहायकारी बन गईं। प्रतापने शपथ खाई कि जबतक चित्तौर वापस न लूंगा तब तक सेना के पीछे नक्कारे न बजा करेंगे, सोने चांदीके पात्रों की जगह पत्तों पर खाऊँगा और अपनी डाढ़ी उस समय तक नहीं मुंडवाऊँगा जब तक चित्तौर राजस्थान में अपनी प्राचीन अवस्था न प्राप्त कर लेगा।

जयपुर का राजा मानसिंह जिस ने अकबर के साथ अपनी बहिन ब्याह कर अपना सम्बन्ध बना लिया था, अकबर के लिये विजय करता हुआ मेवाड़ के पास से गुजरा। उसे राणा प्रताप से मिलने की इच्छा हुई। वह उदयपुर गया। प्रताप का बेटा और सरदार आतिथ्य के लिये आ उपस्थित हुए। पर प्रताप ने कहला भेजा कि उस के सिर में दर्द है, इस कारण वह भोजन के समय न आ सकेगा। मानसिंह ताड़ गया कि यह सिर्फ बहाना था। वह बिना भोजन किये उठ बैठा और उस के साथियों ने भी घोड़े कस लिये। इतने में प्रताप एक मैला सा वस्त्र पहने, पर चमकता हुआ मुख ले कर सामने आया। मान की कोपाग्नि भड़क उठी और उस ने कहा, "अगर मेरा नाम मान है तो मैं तुम्हारा अभिमान

तोड़ूँगा।" इस पर प्रताप कहने लगा "मानसिंह मैं तुम से हर परिस्थिति में मिलने को तैयार हूं।" साथ ही प्रताप के एक सरदार ने कह दिया, "दूसरी बार अपने फुफा को भी साथ लेते आना।" उन के चले जाने पर प्रताप ने उस स्थान को गङ्गाजल से पवित्र करवाया। और उन के झूँठे बर्तन धरती खोद कर गड़वा दिए।

मानसिंह ने सारा वृत्तान्त अकबर को आ सुनाया। परिणाम यह हुआ कि कई लाख शाही फौज, जिस का सरदार अकबर का बड़ा पुत्र सलीम था, चित्तौर पर चढ़ आई। प्रताप बड़ी कठिनता से बाईस हज़ार वीर राजपूत इकट्ठे कर सका। शाही फौज ने सब ओर से घेरा डाल दिया। केवल हल्दी घाट ही एक मार्ग पहाड़ को जाता था। इसी स्थान पर विक्रमी संवत १६३४ में बड़ी भारी लड़ाई हुई। प्रताप इधर उधर मानसिंह की खोज में फिर रहा था कि उसे राज कुमार सलीम का हाथी दृष्टिगत हुआ। उस ने अपना घोड़ा बढ़ा कर हाथी पर वार किया। महावत मारा गया। किन्तु हौदा लोहे का होने के कारण सलीम की जान बच गई और हाथी वहाँ से भाग निकला। इतने में शाही सेना ने प्रताप को आ घेरा। प्रताप को तलवार और भाले के कई घाव लगे। झाला के सरदार ने प्रताप को संकट में पाकर उस का छत्र अपने सिर पर ले लिया। छत्र को देख शाही सिपाही उस की चहुँ ओर आ इकट्ठे हुए। प्रताप

अपने प्रसिद्ध घोड़े चेतक पर सवार हो कर मैदान से भाग निकले। दो मुसलमान सवार भी उस के पीछे हो लिए जो कोसों तक भागते हो गए।

कुछ समय पहले प्रताप का भाई सकत उस से नाराज़ हो कर अकबर के यहाँ चला गया था। मैदान से भागते हुए भाई को विपति में देख कर उस से न रहा गया। दोनों मुसलमान सवारों का वध कर के उस ने राणा को आवाज़ दी "ओ, नीले घोड़े वाले सवार, ठहरो।" प्रताप ने घोड़ा रोक लिया। ज्यों ही कि वह ठहरा उस के थके हुए जानवर ने प्राण दे दिए। एक भाई दूसरे के सामने आया दोनों गले मिले। सकत बोला : "तुम्हारा पीछा करनेवाले सवार यहाँ मरे पड़े हैं। यह मेरा घोड़ा तुम ले लो क्योंकि चेतक तो अब चला गया है।" तत्पश्चात् उसे वहीं छोड़ कर प्रताप आगे बढ़ा।

इतने में वर्षाऋतु आ गई। मैदान छोड़ सेना लेकर सलीम वापस लौट गया। अगले बरस उस ने फिर चढ़ाई की। अब प्रताप कभी मैदान में शत्रु का मुक़ाबला करता था और कभी जङ्गलों तथा पर्वतों की गुफाओं में छिपता फिरता था। उस समय राणा और उस के साथी फल, फूल, पत्ते और घास खाया करते थे। तब राणा की सधर्मिणी और लड़के लड़कियाँ भी साथ थे। उन की रक्षा करने के लिए वह उन्हें वृक्षों के पत्तों में छिपा दिया करती थी।

रानी ने एक दिन पाँच बार खाना पकाया। पाँचों बार शत्रु के आ जाने पर भोजन छोड़कर भागना पड़ा। अंतिम बार जब भोजन पका तब एक एक रोटी सब को मिली। एक लड़की ने अपने हिस्से की आधी रोटी खाई और बाकी आधी वृक्ष के साथ लटका दी। एक जङ्गली बिल्ली आई और वह रोटी उड़ा ले गई। इस पर लड़की चिल्ला उठी। इस सिंह हृदय राणा प्रताप का चित्त, जो तलवारों और भालों के सामने छाती रख सकता था, एक बार डावाँडोल हो गया। उस ने अकबर को सुलह के लिये पत्र लिखा। अकबर उस पत्र को पाते ही खुशी से फूला न समाया।

यह पत्र उसने बीकानेर के एक राजकुमार पृथिवीराज को दिखाया। पृथ्वीराज शक्तिसिंह (सकत) की लड़की से ब्याहा हुआ था। यद्यपि वह अकबर के दरबार में रहता था, तो भी वह प्रताप के साथ सहानुभूति रखता था। गुस्से में आकर उसने वह पत्र एक तरफ फेंक दिया और कहा कि यह पत्र प्रताप का नहीं हो सकता। उस के जाँचने के लिये उस ने प्रताप को कविता में एक पत्र लिखा, जिसका आशय यह था—"हिन्दुओं की आशा एक ही हिन्दू पर लगी हुई है। यदि प्रताप भी अकबर के हाथ आ गया तो समस्त हिन्दू जाति अकबर की दृष्टि में एक जैसी हो जायगी। हम मनुष्यों में से शौर्य्य तथा धैर्य्य और स्त्रियों से लज्जा आदि गुण लुप्त होगये थे, इसी कारण अकबर हमारी जाति को

मालिया मेट कर रहा है। उस ने सब कुछ खरीद लिया है, अफेल प्रताप की कीमत वह नहीं दे सका। यद्यपि राणा ने अपना सर्वस्व खो दिया है तथापि राजपूती मान-मर्य्यादा का खज़ाना उस के पास है। संसार पूछता है, प्रताप को यह सहायता कहाँ से मिलती है? उस के पास वीरता और तलवार के सिवा और कुछ नहीं? इस बाजारी सौदागर अकबर का एक दिन अन्त हो जायगा। तब हम प्रताप से प्रार्थना करेंगे कि वह इस वीराने में राजपूती का बीज बोवे। क्योंकि उस के बचाने के लिये सब की आँखें प्रताप पर ही लगी हुई हैं।"

प्रताप ने पत्र पढ़ते ही सुलह का विचार त्याग दिया और मेवाड़ से निकल कर बहुत दूर देश में एक राज्यसत्ता स्थापित करने का इरादा किया। उस समय उस के पिता का मन्त्री भामाशाह का दूत आया कि प्रताप क्यों बाहर जाता है, जब कि मेरी सारी धन-सम्पत्ति, जिससे पचीस हज़ार सिपाही बारह वर्ष तक रक्खे जा सकते हैं, उस के अर्पण है। प्रताप ने जाने का ख्याल छोड़ दिया, सेना इकट्ठी की और फिर सारा मेवाड़ अपने आधिपत्य में कर लिया। मानसिंह से बदला लेने के लिये उस ने अम्बर (जयपुर) को लूटा और ईंट से ईंट बजाई। इतने में अकबर की मृत्यु हो गई। पर इस से पूर्व ही उसका शत्रु राणा प्रताप भी राजपूतों के भविष्य पर निराशा के घोर बादल छाये हुए देखता हुआ

स लोक से सिधार गया था।

पृथिवीराज की चिट्ठी ने प्रताप के मान और राजपूतों की जीवन मर्यादा की रक्षा की। उस पत्र की तह में पृथिवीराज की स्त्री का हाथ था। इस घटना के थोड़े ही दिन पहले उसने अकबर को बड़ा मजा चखाया। अकबर ने एक मीना-बाजार बनवाया था, जो महीने में एक बार लगा करता था। उस में केवल स्त्रियाँ ही जा सकती थीं। अकबर स्वयं उस में भेस बदल कर आया करता था। वहाँ पर यदि वह किसी स्त्री को पसन्द करता तो उसका सतीत्व भङ्ग कर देता था। पृथिवीराज की स्त्री बड़ी सुन्दर थी। एक बार वह बाजार में से गुजर रही थी कि अकबर की दृष्टि उस-पर पड़ी। वह अपना सौदा खरीदकर वापस जा रही थी। मार्ग बड़ा तंग और अन्धकारमय था। अकस्मात् उसे एक आदमी का सामना हुआ। तत्काल वह ताड़ गई। अपनी आराध्य देवी का ध्यान कर उस ने रक्षा की प्रार्थना की। तत्पश्चात् कमर से खड्ग निकाल कर वह बादशाह के गले पर बैठ गई। अकबर घबरा गया। राजपूतनी ने कहा: "प्रतिज्ञा करो कि यह मेला बन्द कर दोगे तथा आगे कभी ऐसा अनुचित कार्य न करोगे।" अकबर ने प्रण किया और मेला भी बन्द कर दिया।

औरंगज़ेब और राजपूत देवियाँ।

प्रताप का पुत्र में पिताके बहुतसे गुण थे। प्रताप ने जीवनके २८ वर्ष बनों में व्यतीत किये, परन्तु उस का जीवन आदर्श जीवन था और वो बनोंमें घूमता हुआ भी मेवाड़ का सच्चा राजा था। जहाँ वो था, मेवाडका मुकुट भी वहीं था। मृत्यु के समय अपनी जाति के भविष्यत् को देख कर उस ने एक लम्बी साँस ली। मन्त्रियों ने जब उसका कारण पूछा तब राणा ने उत्तर दिया कि, "मुझे भय है कि मेरे बाद इन कुटियों के स्थान पर महल बन जायँगे, तुम सब विलासी हो जाओगे, मेवाड़ की स्वतन्त्रता, जिसके लिए इतना खून बहाया जा चुका है, मिट्टी में मिल जायगी और हमारा देश तुर्कों के हाथ में चला जायगा।" तिस पर सब ने शपथ ली कि "जब तक चित्तौर हमारे हाथ में न होगा हम महल नहीं बनायेंगे और जब तक हमारे शरीर में लहूका एक भी बिन्दु है तब तक मेवाड़ की स्वतन्त्रता हाथ से नहीं जाने देंगे।" प्रताप ने शान्तिपूर्वक अपनी देह को त्याग किया। परन्तु उस के बाद हुआ वही जिसका उसे भय था। चित्तौर का हित चिन्तक त्याग कर लोग भोगों में रत हो गये।

अकबर की मृत्यु के पश्चात् उस के उत्तराधिकारी जहाँगीर और उस का पुत्र शाहजहान अकबर की शासन

शैली के अनुसार राज्य करते रहे। जहाँगीर अपने पिछले दिनों में पिता के विरुद्ध खड़ा हो गया।

अकबर के दरबार में एक ईरानी अमीर अब्बास मिर्ज़ा ने शरण ली थी। अब्बास मिर्ज़ा का वंश ईरानमें बड़ा प्रतिष्ठित था। समय के चक्र से ऐसे उलटे दिन आए कि अब्बास को अपना देश छोड़कर भागना पड़ा। वह और उस की स्त्री पैदल सफर करते आरहे थे। स्त्री गर्भवती थी। रास्ते में उस की एक लड़की पैदा हो गई। सफर और भूख के कारण वे इतने तंग थे कि अपने कलेजे के टुकड़े को वहीं छोड़कर वे आगे चल गए। पीछे व्यापारियों का एक क़ाफ़ला आरहा था। उन में से एक ने लड़की की रोने की आवाज़ सुनकर उसे उठा लिया और आगे पहुँचकर उन्हों ने अब्बास की स्त्री को ही दे दिया। साथ ही यह भी कहा कि तुम इस का पालन पोषण करो हम तुम्हें इस के लिए धन दे देंगे।

क़िस्मत के खेल देखिए। अब्बासमिर्ज़ा अकबर के दरबार में दरबारी बन गया। वह लड़की रूप लावण्य में इतनी बढ़ी कि अकबर का बेटा जहाँगीर उस पर मोहित हो गया। जहाँगीर के गद्दी पर बैठने पर यह लड़की वह मशहूर नूरजहाँ बनी, जिस के हाथ में समस्त देश की बागडोर थी। जहाँगीर स्वयं कहा करता था कि, 'नूरजहाँ के हाथ से एक प्याला लेकर मैं ने उसके हाथ अपना सारा

राज्य बेच दिया है।"

अकबर को जहाँगीर का एक परदेशी लड़की पर मोहित होना पसन्द न था। बादशाह ने उस का विवाह शेरअफगन खां से कराके उसे बङ्गाल का अधिकारी बना दिया। जहाँगीर को उस लड़की की याद न भूली थी। गद्दी पर बैठते ही उसने शेर अफगन को मरवा डाला और युवती को अपने पास मंगवा लिया। कुछ समय तक उस ने बादशाह के साथ रहना स्वीकार न किया, परन्तु अन्त में वह उस से प्रेम करने लगी और उस का नाम नूरजहाँ मशहूर हुआ। जहाँगीर के जीवन पर नूरजहान का बड़ा प्रभाव रहा। राज्य में भी उसका हाथ था। जहाँगीर के बाद उस का बड़ा पुत्र शासन का अधिकारी था। नूरजहाँ उसके स्थान पर अपने पहले बेटे को राज्याधिकार दिलाना चाहती थी। इस से शाहजहान पिता के ऐसा विरुद्ध हुआ कि युद्ध के लिये तैयार होगया। इस में राजपूत उसकी सहायता भी करते रहे।

जहाँगीर को इमारतें बनवाने और बाग लगवाने का बड़ा शौक था। वह प्राय, कश्मीर की सैर करने जाया करता था। उधर ही उसकी मृत्यु हुई और लाहौर में उसका मक़बरा बनवाया गया।

शाहजहान राजगद्दी पर बैठा। वह भी जहाँगीर की भाँति राजपूतनी के पेट से उत्पन्न हुआ था। उस का बड़

पुत्र दाराशिकोह भी राजपूतनी के उदर से पैदा हुआ था। अकबर ने केवल राजपूत लड़कियों से विवाह ही नहीं किया बल्कि उस की इच्छा थी कि राजपूत भी मुग़ल लड़कियों से विवाह करें। अकबर चाहता था कि उसे हिन्दू धर्म में ले लिया जाय। वह अपने वंश को देश के पुराने राज्याधिकारियों से मिला देना चाहता था। ब्राह्मणों ने यही भूल की जो इस साहसपूर्ण कार्य से चूक गए। यद्यपि अकबर हिन्दू न बन सका तथापि हिन्दू सभ्यता का उस के बेटे पोते पर बड़ा प्रभाव पड़ा। दाराशिकोह तो खुले तौर पर हिन्दू था। वह गीता और उपनिषदों को पढ़ा करता था और इन्हें ही धर्म की उत्तम पुस्तकें मानता था। यहीं तक ही नहीं बल्कि उस ने अपने उपनिषदों के अनुवाद की भूमिका में लिखा है कि, "अफ़लातूँ, जो यूनानी दर्शन शास्त्र का जन्मदाता था, एक भारतीय विद्वान् का शिष्य था। वह विद्वान् ऋषि व्यास के अनुयायियों में से एक था।" दीनदार मुसलमान इस से जलते थे।

शाहजहान के छोटे पुत्र औरङ्गज़ेब ने इसका लाभ उठाना चाहा। शाहजहान दैवयोग से बीमार होगया, दाराशिकोह को उसने पास बुला लिया। इस पर औरङ्गज़ेब ने दूसरे दो भाइयों मुराद और शुजा से पत्रव्यवहार कर के उनको अपने पक्ष में कर लिया और सेना लेकर दक्षिण से रवाना हुआ।

यशवन्तसिंह मारवाड़ का बड़ा प्रसिद्ध राजा था। उसकी रानी मेवाड़की राजकुमारी थी। रानी में शौर्य, उत्साह और साहस पति से बढ़कर था। उस ने राजा को सलाह दी कि तुम्हें इस समय दाराशिकोह को सहायता देनी चाहिये। यशवन्तसिंह बहुत सी सेना लेकर औरङ्गजेब तथा मुराद की सेना को उज्जैन के समीप मिला। उस के विरोधियों की संख्या अधिक थी। इस लिए हार गया, और राजपूत मारे गए। यशवन्तसिंह वापस जोधपुर चला आया। रानी ने किले के द्वार बन्द करवा दिए। वह यशवन्तसिंह का मुँह न देखना चाहती थी। कभी कहती कि ऐसा कायर जो युद्ध से भाग आया है राजपूतनी का पति नहीं हो सकता। कभी चिता पर जलने को उद्यत हो जाती। अन्त में उसका क्रोध कुछ शान्त हुआ तब उस ने राजा को महलों में प्रवेश करने दिया। कहा जाता है कि जब राजा भोजन खाने बैठा तब रानी के इशारे से राजा के सामने सब बरतन लोहे के रक्खे गये। राजा को बड़ा गुस्सा आया। रानी भी दासियों पर क्रुद्ध होकर बोली, "देखती नहीं राजा तो पहले ही लोहे से डरकर यहां भाग आये हैं और तुम ने फिर लोहा ही उन के सामने ला रक्खा है।"

औरङ्गजेब अपने दोनों भाइयों की सहायता से दाराशिकोह के मरवाने में कामयाब होगया। उस ने अपने पिता को क़ैद में डलवा दिया और शुजा के विरुद्ध लड़ाई शुरू

रही। पर यशवन्तसिंह से डरता था। इस ने राजा को कहला भेजा कि मैंने तुम्हारा पिछला अपराध क्षमा कर दिया, तुम सेना लेकर शुजा के विरुद्ध लड़ो। यशवन्तसिंह ने स्वीकार कर लिया क्योंकि यह उस के लिए बदला लेने का समय था। दिल्ली पहुँचने पर उस ने बादशाह की सेना पर आक्रमण किया, सब को काट डाला और सारा सामान लेकर जोधपुर को कूँच किया। तब रानी को तसल्ली हुई। औरङ्गज़ेब शुजा के विरुद्ध भी सफल हो गया। उसने यशवन्तसिंह का दूसरा अपराध भी क्षमा करके उसे गुजरात का अधिकारी बनाया। परन्तु वह दिल में यशवन्तसिंह से डरता रहता था। इसलिए उसे काबुल का अधिकारी बना कर भेज दिया। इस काम में नीति यह थी कि यदि यशवन्तसिंह ने अफगानों को काबू कर लिया तो अच्छा, नहीं तो यशवन्तसिंह वहाँ मारा जायगा और एक शत्रु जाता रहेगा। यशवन्तसिंह अपनी वीर रानी और दो पुत्रों को भी साथ लेता गया। उसका एक बड़ा पुत्र पृथ्वीराज दिल्ली में ही औरङ्गज़ेब के पास रहा करता था। औरङ्गज़ेब ने एक बार उसके दोनों हाथ पकड़ लिए और पूछा कि, "बताओ, अब तुम क्या कर सकते हो?" उस ने उत्तर दिया 'हुजूर जिस का एक हाथ पकड़ लें, उसका पद ऊँचा होजाता है। मेरे तो आप ने दोनों हाथ पकड़ रक्खे हैं इसलिए मेरे जैसा किस का पद हो सकता है।'

औरङ्गजेब की कुटिलता देखिए। यह उत्तर सुनकर वह ऊपर से तो हँस पड़ा, परन्तु दिल में राजपूत बच्चे की चतुराई देखकर जल गया। जुदा होते उसने राजपूत बालक को एक ऐसा कोट दिया जिस में विष भरा था। पृथ्वीराज को उसे पहनने से रोका भी गया परन्तु बच्चा था इसलिए खुशी में उसने कोट पहन लिया और प्राण दे दिये।

इधर बड़ा बेटा तो इस तरह मारा गया दूसरे दो काबुल में मर गए। यशवन्तसिंह भी वहीं मारा गया। रानी सती हो जाती, परन्तु गर्भवती थी। उस से एक बच्चा पैदा हुआ जिसका नाम अजीत रक्खा गया। बड़ी मुसीबतों के बाद वह दिल्ली पहुँचे। औरङ्गजेब ने हुक्म दिया कि रानी को दिल्ली से बाहर न निकलने दिया जाय जब तक कि वह बच्चे को बादशाह के हवाले न कर दे। रानी मुक़ाबला करने को तैयार हो गई। बच्चे को एक मुसलमान के हाथ बाहर रवाना कर दिया और फिर रानी और उसके राजपूत, जिन का नेता दुर्गादास राठौर था, शाही सिपाहियों का मुक़ाबला करके दिल्ली से बाहर निकल आये। वे बच्चे को लेकर जोधपुर आ पहुँचे।

ज्यों ही उस ने यशवन्तसिंह को मरवाया त्योंही उस ने हिन्दुओं पर धार्मिक पक्षपात के कारण कष्ट देना शुरू किया। इस से वह मुसलमान दीनदारों को खुश करना चाहता था। और उन की मदद से अपना राज्य सुदृढ बनाना चाहता था।

बस ने अपने बड़ों की नीति का बिलकुल बदला और देश में मजहबी पक्षपात की आग लगा दी । हिन्दुओं के लिए काली घटाएं छा गईं । मंदिरों के घण्टे बन्द हो गए । ब्राह्मणोंने पूजा पाठ छोड़ दिया और लोग जबरदस्ती मुसलमान बनाए जाने लगे । हिन्दुओं पर जजिया लगाया गया ।

औरंगजेब ने सुना कि यशवन्त सिंह के लड़के अजीत को आबू पहाड़ पर गुप्त रीति से पाला जा रहा है । उस ने मारवाड़ पर चढ़ाई करदी। मारवाड़ का अधिकारी दुर्गादास जोधपुर की रक्षा में लग गया । परन्तु उसी समय एक और घटना घटी, जिस से मेवाड़ का राणा राजसिंह भी औरङ्गजेब के खिलाफ मुकाबले को तैयार हो गया । प्रताप के पश्चात् उसका लड़का जयसिंह कई बरस तक शाही फौज का मुकाबला करता रहा । अब वह थक कर रह गया था, इस ने शाहजहान से मित्रता कर ली । उसका लड़का कर्ण भी ऐसे ही राज्य करता रहा । सोलहवीं शताब्दी के अंतिम वर्ष में राजसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठा ।

राजपूताना में एक छोटी सी रियासत रूपनगर की राजकुमारी प्रभावती सौंदर्य में अद्वितीय थी । औरंगजेबने अपने दूतों द्वारा उसका वृत्तांत सुन कर उस के साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की । कुछ सेना डोली लेकर उसे लाने के लिए गई । राजकुमारी ने यह समाचार सुनते ही निश्चय कर लिया कि वह वैसे क्रूर और अत्याचारी

म्लेच्छ को अपना पति नहीं बनायगी। उस ने गुप्त रीति से राजसिंह के नाम यह पत्र लिख भेजा—"जिस प्रकार एक हंसनी के साथ बगुला नहीं होता, उसी प्रकार एक राजपूतनी दुराचारी, दुराग्रही, नृशंस की संगिनी नहीं बन सकती। आप यदि मेरे सतीत्व की रक्षा न करेंगे तो मैं खुद मर जाऊंगी" राणा ने पत्र पढ़ते ही उसे बचाने का संकल्प कर लिया। राणा ने अपने सरदारों की एक सभा बुलाई और उन से पूछा कि कौन ऐसा जवान है जो एक राजपूतनी की लाज की रक्षा करेगा। यह कह कर उस ने मैदान में एक तलवार रक्खी। जब युवक सरदार चूडावत ने तलवार उठाली। और कहा कि जब तक राणा राजकुमारी को रूपनगर से ले न जायगा तब तक वह औरंगजेब को रास्ते में रोके रक्खेगा।

अभी कुछ ही समय पहले चूडावत का विवाह एक युवती हाडी से हुआ था, वह अपनी अर्धांगिनी से आज्ञा लेने को घर पहुंचा। और उस से कुछ बात कह कर उसे यह स्मरण कराया कि मेरे पीछे तुम अपना कर्त्तव्य भली भांती जानती हो। हाडी ने अपने पति को सहर्ष रणभूमि में भेजा। सरदार थोड़ी दूर ही गया था कि फिर लौटा और घर आकर हाडीसे कहने लगा कि "मुझे भय है कि मैं तो जीता न आऊंगा, पीछे तुम्हारा क्या होगा"? सरदारनी ने कहा "पतिदेव, आप क्यों घबराते

हो। मैं अपना धर्म अच्छी तरह जानती हूं, आप अपने धर्म का पालन करें।' चूड़ावत चल तो पड़ा परन्तु उस का मन घर पर था। अपने एक पुरोहित को घर पर भेजा राजकुमारी ने समझ लिया कि जब तक वह जीती है उस के पति का मन उसी की ओर रहेगा। उस ने चट पट निश्चय कर पुरोहित से कहा, महाराज! यह सिर लेजा कर मेरे स्वामी को दे देना। खंजर लेकर उस ने गले पर चला दिया सिर तन से जुदा हो गया।

सिर को देख कर चूड़ावत का चित शांत हो गया। अपने साथियों को साथ लेकर वह शाही फौज पर टूट पड़ा। राणा राजसिंह सेना सहित रूपनगर पहुंचा और राजकुमारी को अपने साथ ले आया। राजकुमारी ने राणा को देखते ही कहा 'आप की इस नेकी के बदले में मेरे पास कुछ नहीं। यदि मेरा हाथ किसी मूल्य का है तो ये सेवा में है, ग्रहण कीजिए।' राणा ने राजपूतनी देवी का हाथ चूमा और विधि पूर्वक उस से विवाह कर लिया, तब राणा राजसिंह ने औरंगज़ेब को एक पत्र लिखा, जिस में अकबर आदि पहले बादशाहों की नीति की प्रशंसा करते हुए कहा—"आप के राज्यकाल में मुग़लों के हाथ से कितने ही देश निकल गए हैं। सब जगह अंधेर छाया हुआ है। प्रजा कष्ट में है। जो बादशाह स्वयं अशांत है, उस के सरदारों की तो क्या कथा? प्रजा को एक बार

भी पेट भर भोजन नहीं मिलता। उस बादशाह का आधिपत्य और मान कैसे स्थिर रह सकता है जो दरिद्र तथा क्षुधा पीड़ित प्रजा पर इतना भारी कर लगाता है। पूर्व से पश्चिम तक सब को मालूम है कि बादशाह हिन्दुओं से ईर्षा द्वेष करता है। और इसीलिए उन से जजिया ले रहा है। यदि आप को खुदा के कलाम पर विश्वास है तो आपको विदित होना चाहिए कि परमात्मा सब के लिए एक ही है, केवल मुसलमानों का नहीं। क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सब उस के पैदा किए बन्दे हैं। रङ्ग रूप का देखना ठीक नहीं। मजहबी पक्षपात के कारण हिंदुओं को दुख देना अत्यन्त घृणित है। अगर जजिया लेना हो तो सब से पहले मेरे जैसे आदमियों से जजिया लेना चाहिए। औरङ्गजेब कुपित हो बदला लेने के लिए उद्यत हो गया और मेवाड़ पर भी धावा बोल दिया।



हिन्दू जातीय जीवन



अब हम भारतवर्ष के इतिहास के उस दर्जे पर आ पहुंचे हैं जब इसलाम का पतन शुरू होता है। इसलाम का जितना प्रभाव होना था सो हो लिया। इस समय कई अन्य शक्तियां ऐसी उत्पन्न हो गईं, देश के इतिहास में जिन का बड़ा भाग है। मुसलमानी शासन का वर्णन यहीं पर समाप्त करके यहां उन्हीं शक्तियों का वर्णन करेंगे। ऊपर हम ने देखा कि राजनैतिक क्षेत्र में इसलामिक शक्ति का हिन्दुओं ने किस प्रकार मुकाबला किया। अब हम देखेंगे कि इसलाम मज़हब का हिन्दू धर्म पर क्या प्रभाव पड़ा।

यह साधारण अनुभव की बात है कि निहाई पर जब हथौड़े का आघात होता है तब तत्काल ही निहाई की ओर से प्रत्याघात होता है जो हथौड़े को ऊपर ले जाता है। ऐसे ही जब हिन्दू धर्म पर इसलाम का आघात हुआ, तब इस की तरफ से भी प्रत्याघात हुआ। उस का आरम्भ काशी में रामानन्द ने किया। रामानन्द रामानुज आचार्य के शिष्यों में से एक था। रामानुज ने धर्म की दृष्टि से हिंदुओं की नीच जातियों पर समता का बर्ताव करने की शिक्षा दी थी। रामानन्द ने इस प्रचार का केंद्र काशी बनाया। उस के कई चेले नीच जाति के थे, जिन में से कबीर का नाम बहुत प्रसिद्ध है। कबीर ने हिंदुओं में प्रचलित कुरी-

तियों के विरुद्ध बड़े ज़ोर से प्रचार किया। साथ ही मुसल मानों की कुरीतियों का भी भली भांति खण्डन किया। कबीर के विचारों का भारत के भिन्न २ प्रांतों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इसी समय बंगाल में चैतन्य ने विष्णु पूजा का प्रचार आरम्भ किया। इस प्रचार में साधारण सामाजिक सुधारों के अतिरिक्त कृष्ण की अनन्य भक्ति पर बहुत ज़ोर था। उन लोगों ने न केवल नीच जाति के लोगों को मुसल्मान होने से रोकने का प्रयत्न किया बल्कि बहुत से मुसलमानों को हिन्दु धर्म में ले लिया।

इसी भाव से प्रेरित होकर पंजाब में इसी समय गुरु नानक देव ने अपना प्रचार शुरू किया। गुरू नानक के पश्चात् जितने गुरू उन के स्थान में गद्दी पर बैठे वे अद्वितीय सच्चरित्र मनुष्य थे। यही कारण है कि गुरु नानक के प्रचार को अधिक सफलता प्राप्त हुई। गुरुओं द्वारा स्थापित धार्मिक संस्था धीरे २ एक राजनैतिक संस्था में परिणित हो गई। इस का वर्णन एक पृथक परिच्छेद में किया जायगा।

गोस्वामी तुलसीदास ने जिस प्रकार अपनी प्रसिद्ध पुस्तक रामायण द्वारा उत्तरी भारत में राम की भक्ति की एक लहर चलाई उसी प्रकार महाराष्ट्र में तुकाराम ने हिन्दुओं के अंदर एक नया धार्मिक जीवन उत्पन्न किया। तुकाराम के बाद स्वामी रामदास हुए, जिन्होंने धर्म को

राजनीति के साथ मिलाकर राष्ट्र धर्म का प्रचार किया। इस प्रचार का परिणाम शिवाजी और मराठा साम्राज्य था, जिस का वर्णन अब यत्र किया जायगा।

तात्कालिक राजनैतिक भारत

मुगल बादशाहओं की राजधानी दिल्ली या आगरा में हुआ करती थी। यद्यपि पंजाब एक नाजम के नीचे एक पृथक् प्रान्त था, बादशाह साल में कुछ समय लाहौर में रहा करता था। तब बङ्गाल एक बड़ा प्रान्त था जिस पर मुसल मान सूबेदार राज्य करता था। शेष दक्षिण प्रान्त था। उस के विषय में जानने के लिये इतना बताना जरूरी है कि प्राचीन काल में दक्खन में तीन बड़े वंश राज्य करते थे, करल, चोल, पाण्डय। इन राज्यों में विजयनगर सब से अधिक प्रभावशाली तथा प्रसिद्ध था। इसे कायम हुए एक हजार वर्ष से अधिक समय हो गया था। इन के सब तरह की विद्याओं तथा कला कौशल में उन्नति की थी। जगद्वि-ख्यात माधवाचार्य और सायणाचार्य दोनों भाई यहीं उत्पन्न हुए। जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं उस समय विजय नगर के स्थान में मैसूर राज्य स्थापित हो चुका था। इस के अतिरिक्त एक बड़ा मुसलमान राज्य हसनगङ्गू बहमनी नाम से स्थापित हुआ। हसनखान नामक एक

मुसलमान गंगू ब्राह्मण के पास नौकर था। ब्राह्मण ने इस के अन्दर ऐसे गुण देखे जिस से उस ने यह भविष्यवाणी की कि यह मनुष्य एक राज्य स्थापित करेगा। ब्राह्मण के कथन से प्रेरित हुए हसन खान को अपने प्रयत्न में बहुत मदद मिली। उस ने कुछ दिलचले नौजवान इकट्ठे किये और लूट मार करना आरम्भ किया। राजे दुर्बल और निकम्मे हो चुके थे। जनसाधारण में कोई राजनैतिक विचार या आचार न था। वे केवल ताकत के पुजारी हो चुके थे। जो मनुष्य बुरा या भला, हिन्दू या मुसलमान, देशी या विदेशी ताकत हासिल कर लेता था, वही उन का राजा हो जाता था। ऐसे लोगों पर राज्य करना कौन सा कठिन काम था। केवल मन में दृढ संकल्प करना तथा आरम्भ में कुछ साथियों का इकट्ठा करना आवश्यक था। एक गांव आधीन कर के दूसरा, उस के बाद तीसरा, और इस तरह आगे आगे बढ़ते जाना कौन सा कठिन काम है जब कि आगे से सामना करने वाला न कोई राजा हो और न प्रजा। लोग मनुष्य न थे, भेड़ें हो चुके थे, । ऐसे लोगों पर विजय पाकर हसनखान ने एक बड़ा राज्य स्थापित कर लिया। डेढ सौ वर्ष तक यह राज्य विद्यमान रहा। तत्पश्चात् छिन्न भिन्न हो कर उस के स्थान पर पांच बड़ी रियासतें स्थापित हुई।

मुगल बादशाहों ने इन के साथ युद्ध कर के तीन को

अपने साथ मिला लिया। बीजापुर और गोलकण्डा शेष रह गया। दक्षिण का बहुत सा भाग दिल्ली के साथ मिला दिया गया। दक्षिण पर एक पृथक सूबेदार नियत हुआ।

औरङ्गजेब की यह उत्कट इच्छा थी कि दक्षिण के अन्दर बीजापुर और गोलकुण्डा की स्वतंत्र रियासत को भी अपने साथ मिला कर सारे दक्खन में अपना राज्य स्थापित करे। इस के लिए उस ने परिश्रम करना शुरू किया।

यूरोपीयन जातियों का भारत वर्ष में आना

जिस समय में खुश्की के एक ही मार्ग से मुगल आर्य्यावर्त में आये और एक नया राज्य स्थापित हुआ, उसी समय समुद्र के मार्ग से यूरोपीय जातिया यहां पर आई। उन का उद्देश व्यापार था। उन का मजहब ईसाई था। उन के दिल स्वदेश प्रेम से भरे थे।

टर्की आदि देश तुर्कों के अधिकार में आ जाने से भारतवर्ष के साथ यूरोप के व्यापार का स्थलमार्ग बन्द हो गया। १४ कोलम्बस नामक एक मनुष्य ने यह प्रत किया, कि वह भारत की ओर समुद्री मार्ग ढूंढेगा। फिरता फिरता वह

दक्षिणी अमेरिका के निकट 'गार्डुल हिन्द' नामी तक जा पहुंचा। भारत का मार्ग ढूंढने का एक और कारण हुआ। स्पेन और पुर्तगाल के देश कोई सात सौ वर्ष तक मुसलमानों के राज्य के नीचे रहे इस अरसे में मुसलमान राजे बहुत गिर गए। केवल पहाड़ में बची हुई दो स्वतन्त्र रियासतें कैस्टील और आरागान ईसाई थीं। ये दोनों परस्पर विवाह के सम्बन्ध से एक हो गई। जब यह एक हुकूमत में आ गई तब उन्होंने मुसलमानों को स्पेन से निकालने के उपाय सोचे और शेष यूरोप की सहायता से इस में सफल हुई। उन्होंने मुसलमानों को अपने देश से निकाल दिया, जो रह गये उन्हें या मार डाला या वे ईसाई बना लिये गये।

अपने देश को वापस लेने पर जोश की ऐसी लहर चली, कि जहाज़ बना कर जहां कहीं मुसलमान थे, उन्होंने उनका पीछा करना शुरू किया। अफरीका के पश्चिमी किनारे होते हुए पुर्तगेज़ जहाज़ केप फालोनी तक जा पहुंचे, वहां से एक जहाज़रां वास्कोडेगामा दूसरे किनारे के साथ ऊपर को चल पड़ा और मोज़मबीक आ पहुंचा। अफ़रीका के पूर्वी किनारे पर भारत के व्योपारी, चिरकाल से आया जाया करते थे। एक हिन्दुस्तानी जहाज़ चलाने वाला सन् १४९७ में वास्कडेगामा को कालीकट ले आया। एक सौ वर्ष तक भारत का व्यापार पुर्तगीज़ों के हाथ में रहा। इस से यूरोप में पुर्तगाल तथा स्पेन मालामाल हो गए।

हालैण्ड स्पेन के आधीन था। स्पेन के जुल्म से तङ्ग आकर हालैण्ड के लोग आधी सदी तक स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्न करते रहे। यह स्वतन्त्र हो गया। और स्पेन के निर्बल हो जाने पर पृथ्वी के उन स्थानों पर अपना हाथ बढ़ाया जिन पर स्पेन का अधिकार था। कुछ समय तक भारत का कुछ व्यापार हालैण्ड के हाथ में भी रहा। तत्पश्चात् इंग्लैण्ड तथा फ्रांस को भी भारत से व्यापार करने का ख्याल हुआ। और कई अंग्रेज लुटेरों ने स्पेन के व्यापार के जहाजों का लूटना शुरु किया। राजेश्वरी एलीजावेथ के राज्यकाल में कई व्यापार सम्बन्धी कम्पनियां स्थापित की गईं, जिन के जहाज हिन्दुस्थानमें व्यापारके लिय आने लगे। अंग्रेज व्यापारी पहले पहल सूरत में आये। तत्पश्चात् उन्होंने मद्रास और कलकत्ते में अपना काम धंधा शुरू किया। शाहजहां की लड़की का इलाज एक अंग्रेज डाक्टर बाटन ने किया। इस के बदले में कई विशेष अधिकार तथा कुछ जमीन कम्पनी के लिये हासिल हुई। उस के बाद फर्रुखसियर की बिमारी का इलाज डाक्टर हेमिल्टन ने किया जिस से उस ने कम्पनी के लिये बङ्गाल में बिना महसूल के व्यापार करने की आज्ञा प्राप्त कर ली।

दक्षिणी अमेरिका के निकट 'गावुंत हिन्द' तापमों तक जा पहुंचा। भारत का मार्ग ढूंढने का एक और कारण हुआ। स्पेन और पुर्तगाल के देश, कोई सात सौ बरस तक मुसलमानों के राज्य के नीचे रहे इस अरसे में मुसलमा राजे बहुत गिर गए। केवल पहाड़ में बची हुई दो स्वतन्त्र रियासतें कैस्टील और आरागान ईसाई थीं। ये दोनों परस्पर विवाह के सम्बन्ध से एक हो गईं। जब यह एक हुकूमत आ गई तब उन्होंने मुसलमानों को स्पेन से निकालने के उपाय सोचे और शेष यूरोप की सहायता से इस में सफल हुईं। उन्होंने मुसलमानों को अपने देश से निकाल दिया। जो रह गये उन्हें या मार डाला या वे ईसाई बना लिये गये।

अपने देश को वापस लेने पर जोश की ऐसी लहर चली, कि जहाज़ बना कर जहां कहीं मुसलमान थे, उन्होंने उनका पीछा करना शुरू किया। अफ़रीका के पश्चिमी किनारे होते हुए पुर्तगेज जहाज़ केप कालोनी तक जा पहुंचे। वहां से एक जहाजी वास्कोडेगामा दूसरे किनारे के साथ ऊपर को चल पड़ा और मोजमबीक आ पहुंचा। अफ़रीका के पूर्वी किनारे पर भारत के व्यापारी, चिरकाल से आया जाया करते थे। एक हिन्दुस्तानी जहाज़ चलाने वाला सन् १४९७ में वास्कडेगामा को कालीकट ले आया। एक सौ वर्ष तक भारत का व्यापार पुर्तगीजों के हाथ में रहा। इस से यूरोप में पुर्तगाल तथा स्पेन मालामाल हो गए।

हालैंड स्पेन के आधीन था। स्पेन के जुल्म से तङ्ग
आकर हालैंड के लोग आधी सदी तक स्वतन्त्रता के लिये
यत्न करते रहे। वह स्वतन्त्र हो गया। और स्पेन के निर्बल
हो जाने पर पृथ्वी के उन स्थानों पर अपना हाथ बढ़ाया
जिन पर स्पेन का अधिकार था। कुछ समय तक भारत का
कुछ व्यापार हालैण्ड के हाथ में भी रहा। तत्पश्चात् इंग्लैण्ड
तथा फ्रांस को भी भारत से व्यापार करने का ख्याल हुआ।
और कई अंग्रेज लुटेरों ने स्पेन के व्यापार के जहाज़ों को
लूटना शुरू किया। राजेश्वरी एलीज़ाबेथ के राज्यकाल में
कई व्यापार सम्बन्धी कम्पनियां स्थापित की गईं, जिन के
जहाज हिन्दुस्थानमें व्यापारके लिये आने लगे। अंग्रेज व्यापारी
पहले पहल सूरत में आये। तत्पश्चात् उन्होंने मद्रास और
कलकत्ते में अपना काम धंधा शुरू किया। शाहजहां की
लड़की का इलाज एक अंग्रेज डाक्टर बाटन ने किया। इस
के बदले में कई विशेष अधिकार तथा कुछ ज़मीन कम्पनी
के लिये हासिल हुई। उस के बाद फर्रुखसियर की बिमारी
का इलाज डाक्टर हेमिल्टन ने किया जिस से उस ने
कम्पनी के लिये बङ्गाल में बिना महसूल के व्यापार करने
की आज्ञा प्राप्त कर ली।

दक्षिणी अमेरिका के निकट 'गाबुल हिन्द' नामक
जा पहुंचा। भारत का मार्ग ढूंढने का एक और
हुआ। स्पेन और पुर्तगाल के देश, कोई सात सौ
मुसलमानों के राज्य के नीचे रहे इस अरसे में मुसलमा
राजे बहुत गिर गए। केवल पहाड़ में बची हुई दो रजवा
रियासतें कैस्टील और आरागान ईसाई थीं। ये दोनों परस्प
विवाह के सम्बन्ध से एक हो गईं। जब यह एक हुकूमत
आ गई तब उन्होंने मुसलमानों को स्पेन से निकालने
उपाय सोचे और शेष यूरोप की सहायता से इन में सफल
हुईं। उन्होंने मुसलमानों को अपने देश से निकाल दिया।
जो रह गये उन्हें या मार डाला या वे ईसाई बना लिये गये।

अपने देश को वापस लेने पर जोश की ऐसी लह
चली, कि जहाज़ बना कर जहां कहीं मुसलमान थे, उन्हों
उनका पीछा करना शुरू किया। अफरीका के पश्चिमी किना
होते हुए पुर्तगेज़ जहाज़ केप कालोनी तक जा पहुंचे
वहां से एक जहाज़ी वास्कोडेगामा दूसरे किनारे के सा
ऊपर को चल पड़ा और मोज़मबीक आ पहुंचा। अफरीक
के पूर्वी किनारे पर भारत के व्यापारी चिरकाल से आय
आया करते थे। एक हिन्दुस्तानी जहाज़ चलाने वाला स
१४६७ में वास्कडेगामा को कालीकट ले आया। एक सौ
वर्ष तक भारत का व्यापार पुर्तगीज़ों के हाथ में रहा। इ
से यूरोप में पुर्तगाल तथा स्पेन मालामाल हो गए।

हालैण्ड स्पेन के आधीन था। स्पेन के जुल्म से तङ्ग आकर हालैण्ड के लोग आधी सदी तक स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्न करते रहे। वह स्वतन्त्र हो गया। और स्पेन के निर्बल हो जाने पर पृथ्वी के उन स्थानों पर अपना हाथ बढ़ाया जिन पर स्पेन का अधिकार था। कुछ समय तक भारत का कुछ व्यापार हालैण्ड के हाथ में भी रहा। तत्पश्चात् इंग्लैण्ड तथा फ्रांस को भी भारत से व्यापार करने का ख्याल हुआ। और कई अंग्रेज लुटेरों ने स्पेन के व्यापार के जहाज़ों का लूटना शुरू किया। रानी एलीज़ाबेथ के राज्यकाल में कई व्यापार सम्बन्धी कम्पनियां स्थापित की गईं, जिन के जहाज़ हिन्दुस्थानमें व्यापारके लिये आने लगे। अंग्रेज व्यापारी पहले पहल सूरत में आये। तत्पश्चात् उन्होंने मद्रास और कलकत्ते में अपना काम धंधा शुरू किया। शाहजहां की लड़की का इलाज एक अंग्रेज डाक्टर बाटन ने किया। इस के बदले में कई विशेष अधिकार तथा कुछ ज़मीन कम्पनी के लिये हासिल हुई। उस के बाद फर्रुख़सियर की बिमारी का इलाज डाक्टर हेमिल्टन ने किया जिस से उस ने कम्पनी के लिये बङ्गाल में बिना महसूल के व्यापार करने की आज्ञा प्राप्त कर ली।

मराठा साम्राज्य

इस्लाम के आगमन पर देश के भिन्न भिन्न भागों के हिन्दुओं में मजहबी हल चल की एक लहर चली। दो भागों में इस धार्मिक लहर ने राजनैतिक रूप धारण किया। एक महाराष्ट्र में, दूसरा पंजाब में। इन दो प्रदेशों में इतना आश्चर्यजनक परिवर्त्तन कैसे हुआ? इस का संक्षिप्त वृत्तान्त इस समय आवश्यक है।

महाराष्ट्र की उत्पत्ति दक्षिणी भारतीय के जीवन में एक ऐसा आश्चर्यजनक व्यापार है। जिस ने औरंगजेब को मरण पर्यन्त चैन न लेन दिया। इस की आयु का बड़ा भाग मराठों के साथ युद्ध करने में व्यतीत हुआ। मराठे लोग बहुत परिश्रमी सहन शील और योद्धा किसान थे। इन का देश पहाड़ी जिस में जंगल, गार और पहाड़ अधिकतर थे, मराठे अहमदनगर तथा बीजापुर के मुसलमान थे। एक मराठा सरदार ने बीजापुर की रियासत की नौकरी में बहुत सी सेवायें कीं, और उसे पूना और सोपा जागीर के रूप में प्राप्त हुए थे। सम्वत १६७४ में उस के घर एक लड़का पैदा हुआ जिस का नाम शिवाजी रक्खा गया। शिवाजी की छोटी आयु जंगी फनों में गुजरी। इस लिये उसे तलवार तथा नेज़ा चलाने का बहुत शौक था। अपना बहुत सा समय शिवाजी शिकार में व्यतीत करता था।

शिवा जी पर उस की माता का, गुरु दादा जी पन्त का और स्वामी रामदास की शिक्षा का प्रभाव था। स्वामी रामदास देश देशान्तरों में भ्रमण कर के महाराष्ट्र में प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं। उसे देश की राजनैतिक परिस्थिति का पूर्णज्ञान था, और उस के हृदय में जाति के राजनैतिक सुधार का बड़ा ध्यान हुआ और सब के लिये उस ने एक ही राष्ट्रधर्म का उपदेश दिया। उस ने अनुभव किया कि जब तक हिन्दू जाति राजनैतिक शक्ति प्राप्त नहीं करती, तब तक उस के धर्म के बचाने की कोई आशा नहीं थी।

शिवाजी के गुरु दादा जी ने मरते समय शिवाजी को पास बुला कर कहा—"मैं उस महायात्रा को जाता हूं, जिस पर सब को जाना है। इस मार्ग से फिर आने की कोई सम्भावना नहीं। तुझे एक नदी से पार उतरना, है। तूने एक बड़ी शक्ति को परास्त करना है पर, मैं देखता हूं, कि तू अकेला है और सहार देखा नहीं। कुछ बातें कहता हूं धर्म पर दृढ़ रहना, गो ब्राह्मणों का सत्कार करना सिपाही को प्राणों से भी प्रिय समझना, मन्दिरों की रक्षा करना और जिस मार्ग पर पद रक्खा है उस से पीछे न हटना।"

शिवा जी पर उस की माता का बड़ा प्रभाव था। वह एक साध्वी स्त्री थी। उसे अपने धर्म से बहुत प्रेम था। कहते हैं, कि देवी ने उसे स्वप्न में यह शुभ समाचार दिया

कि तुम्हारा लड़का राजा बनेगा, धर्म की रक्षा करेगा और मराठा जाति की उन्नति करेगा। माता के प्रभाव से शिवा जी ने यह निश्चय मन में सुदृढ़ कर लिया कि देश से मुसलमान राज्य को दूर कर दूंगा। होश सम्भालते ही उस ने कुछ साथी इकट्ठे किये और तोरनिया, सिंहगढ़, पुरन्धर इत्यादि किलों पर अधिकार जमा लिया। अपनी पहाड़ियों में उस की अवस्था एक सिंह की थी। जब कभी अवसर मिलता, झपटा मार कर किला या खजाना छीन लेता था। यह अवस्था देख बीजापुर के राजा ने उस के पिता शाहजी को कैद कर लिया। शिवाजी ने शाहजहां से अपील की और उस की सहायता से शाहजी को छुड़वा लिया। इस बात से शिवा जी को शै मिली और वह पहले से अधिक बेधड़क हो गया। उस ने मुगलों की भूमि पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। इतने में दिल्ली में एक भारी परिवर्तन हुआ। शाहजहां के बीमार हो जाने पर उस के चारों बेटों में लड़ाई शुरू हुई। सब से छोटे औरंगजेब ने तीन भाइयों को पराजित कर कत्ल करवा डाला और पिता को कैद कर स्वयं गद्दी पर बैठ गया। यह भी बीजापुर का राज्य छीनना चाहता था।

बीजापुर के राजा ने शिवाजी से तंग आकर अपने एक बड़े सरदार अफजलखां को एक बड़ी सेना देकर उस के विरुद्ध रवाना किया। शिवा जी ने उस समय चतुराई से

उन्हों की इच्छा प्रकट की और एकान्तमें मुलाकात पर राजी कर लिया । मराठा इतिहास लेखकों का विचार है कि दोनों अपने अपने मन में एक दूसरे को मार डालना चाहते थे । शिवाजी ज्यादा चालाक निकला और खंजर से अफजलखां को वध कर डाला । उसी समय बिगुलचारी ने बिगुल बजा दिया । शिवाजी के सैनिक बीजापुर की सेना पर जा पड़े और सारा माल, घोड़े और कोष लूट लिया । इसका हौसला अब बढ़ गया । और उस ने मुगलों की भूमि पर फिर आक्रमण आरम्भ कर दिये । औरंगजेब ने शाइस्ताखां को सेना देकर भेजा । शाइस्ताखां पूने में शिवाजी के मकान पर जा उतरा । शिवाजी ने अब एक दूसरी ही चाल चली, अपनी सेना को एक बारात बना कर स्वयं उन के साथ पूने में प्रविष्ट हो गया और रात को उसी मकान पर आक्रमण कर दिया । शाइस्ताखां कठिनता से जीवन बचा कर भाग निकला । उस की अंगुली खिड़की से भागते हुए कट गई । शिवा जी का साहस और बढ़ गया और सूरत को जा लूटा, जहां से मुसलमान हज के लिये जहाज पर सवार हुआ करते थे । औरंगजेब इस से बहुत क्रुद्ध हुआ और राजा यशवन्त सिंह और अपने पुत्र मोअज्जम को उस के विरुद्ध भेजा । यशवन्तसिंह ने शिवाजी से सन्धी कर ली । जब औरंगजेब बीजापुर के साथ युद्ध कर रहा था तब उस ने मुगल सेना की सहायता की । बादशाह ने प्रसन्न हो कर

बुलाया। परन्तु शिवा जी ने वहां पहुंचते ही अपने आ
को कैदमें पाया तब शिवाजीने एक ऐसी चाल चली कि स्व
यह और इस का पुत्र दोनों दिल्ली से निकल कर राजग
पहुंच गए अब शिवाजीने खुल्लमखुल्ला बादशाह का सामन
करना आरम्भ कर दिया और बेकर्मी संवत १७३१ में राज
गद्दी पर बैठ कर महाराजा का पद इख्तियार किया औ
अपने नाम का सिक्का जारी किया। इस के बाद उस का ब
बराबर बढ़ता गया।

एक बार उस ने सूरत को फिर लूटा और शाही सेन
को बड़ी भारी शिकस्त दी। अगले वर्ष बीजापुर, खानदेश
बरार, और करनाटक को पराजित किया। औरंगजेब ने
बीजापुर पर आक्रमण किया। बीजापुर ने तंग आकर शिवा
जी से सहायता मांगी और अन्त में लिखा कि अधिक
लिखने की आवश्यकता नहीं, यदि आना है तो उस समय
से पहले पहुंचो जब कि तुम्हारा आना निष्फल न हो जाये।
शिवाजी ने जोश में आकर सहायता की। शाही सेना को
मार हटाया। बीजापुर की ओर से बड़ी कृतज्ञता प्रकट की
गई। तत्पश्चात ५६ वर्ष की आयु में यह परलोक सिधारा।
मुगल अफसर और सेना बड़े ऐश-व आराम में पड़ गए थे
यहां तक कि सेनापति पालकियों में चढ़ कर युद्ध क्षेत्र में
जाते और उन के साथ बेगमों के तम्बू भी होते थे। प्रात:
काल से तैयारी आरम्भ होती थी और और दिन भर में

बड़ी मुश्किल से शाही सेना दो तीन मील चल पाती फिर विश्राम का समय आता और डेरे डाल दिये जाते।

मराठे सिपाही अपनी पीठ पर चमकीली ढालें लादे घोड़े पर सवार होते। वे सब प्रकार के कष्ट सहने को तैयार रहते। वे एक तरफ से आकर छापा मारते और झट दूसरी तरफ से जा निकलते। बहुत सा सामान तथा भोज्य पदार्थ लूट ले जाते। शाही फौज का रुख उस ओर बदलता था, कि दूसरी ओर से उन के साथी आ पड़ते। यह गुरीला जङ्ग कहाता है जिसमें न केवल मराठे सैनिक प्रत्युत मुगल सेना भी बादशाह पर हंसा करती थी।

इस समय शिवा जी की मृत्यु के बाद उस का पुत्र सभा जी गद्दी पर बैठा। सभा जी मूर्ख और क्रूर स्वभाव का था। परन्तु मराठों का बल जातीय बल था, इस लिये वह बराबर स्थिर रहा। औरङ्गजेब को एक ही चिन्ता रही कि किसी प्रकार से दक्षिण को अपने राज्य में लावे। इस लिये वह बीजापुर और गोलकण्डा का अस्तित्व मिटाने में लगा हुआ था। उस ने उन दोनों को विजय कर नया दक्षिण प्रान्त बनाया जिस की राजधानी हैदराबाद बनाई। अब औरङ्गजेब को अपनी गलती मालूम हुई। इन मुसलमान राज्यों ने मराठों को अपने वश में कर रक्खा था। इन के नाश होते ही सारे दक्षिण के मराठे उठ

खड़े हुए और मुगल सेनाके लिये उन का रोकना कठिन हो गया। दक्षिण के झमेले बड़े पेचीदा थे। केवल इतना बता देना काफी है कि औरङ्गजेब की आयु के शेष २५ बरस दक्षिण में मराठों के दमन में बीते और उस में भी उसे निराशा का मुह देखना पड़ा। यही निराशा उस की मृत्यु के समय दुःख का कारण हुई।

सवत १७४६ में समा जी पूने में मस्त पकड़ा गया। इसे बादशाह के पास ले आया गया। बादशाह ने उसे मुसलमान हो जाने के लिये कहा। आलसी समा जी उस समय दिलेर होगया और उस ने क्रोध से भरा हुआ ऐसा उत्तर दिया जिस को सुन कर औरङ्गजेब की आखें लाल हो गई और उसने समा जी की आखें निकलवा कर उसे मरवा डाला। एक बलिदान ने मराठा जाति में नया जीवन उत्पन्न कर दिया। सभा जी की मृत्यु न मराठा जाति के लिये वह काम किया जो उस के जीवन में कभी न हो सकता था। उस का छोटा भाई राजाराम राजा बन कर मुगल सेना का मुकाबला करता रहा। औरङ्गजेब को एक एक किला लेने में कई वर्ष लगे और फिर भी मराठे अवसर पाते ही लूट मार करते थे और शाही सेना का ऐसा नाक में दम कर दिया कि औरङ्गजेब को उन से अपना पीछा छुड़ा लौटना पड़ा।

इधर राजपूत बागी हो गए। उधर जाट उठ खड़े हुए। पञ्जाब में सिक्खों ने सिर उठाया। इस प्रकार हिन्दू शत्रुओं से घिरा हुआ औरङ्गज़ेब सवत १७६४ में अहमद नगर में मरा। उस के बाद उस का बेटा बहादुरशाह गद्दी पर बैठा। इस से सात वर्ष पहले राजाराम मर चुका था। महाराष्ट्र मे राजाराम की विधवा स्त्री ताराबाई राज्य करती थी। वह मराठों को मुगलों के विरुद्ध बराबर लड़ाती थी। उस का पुत्र अभी छोटा था। बहादुरशाह ने एक चाल चली। सभा जी का पुत्र शिवा जी उस के दरबार में नजरबन्द था। उसे अपने आधीन राजा बना कर बहादुरशाह ने शिवा जी को रिहा कर दिया ताकि वह ताराबाई से अपना राज्य मांगे। उस की वापसी पर कई मराठे सरदार उस के साथ हो गए। उन की सहायता से वह सितारा का राजा बन गया। ताराबाई लगातार चार वर्ष तक उस के विरुद्ध लड़ती रही। परन्तु सवत १७६६ में उस के पुत्र की मृत्यु हो गई। तब अधिक लड़ाई करना व्यर्थ था।

औरङ्गजेब के विरुद्ध बीस बरस के युद्ध ने मराठों में एक नया जातीय-जीवन तथा जोश पैदा कर दिया। शिवा जी ने शाही सेना से कभी मुकाबला न किया था। मराठों ने बिना धन या किसी युद्ध के सामान के शाही सेना का इतनी देर तक मुकाबला किया। इस युद्ध ने मराठों को भारत के राज्य के योग्य बना दिया। इस काल में कए झेल

सहन शीलता, वीरता तथा योग्यता प्राप्त की। ये गुण विना संघर्षण के उत्पन्न न हो सकते थे। शिवा जी द्वितीय नाम मात्र को राजा था। मुगल दरबार में रह कर उस के अन्दर के गुण उत्पन्न न हुआ। इस लिये राज्य का अधिकार उस के पेशवा मन्त्री वाला जी विश्वनाथ के हाथ में आ गया। उस के बाद महाराष्ट्र का राज्य पेशवाओं के हाथ में रहा। सं० १७७७ में बाला जी का पुत्र बाजीराव पेशवा बना। मराठे घुड़सवार इस समय खाली बैठे थे। उन को वश में रखने के लिये बाजीराव ने एक ढंग निकाला। तब मुगल साम्राज्य अवनत दशा में था। बाजीराव ने उस पर आक्रमण करने की ठान ली। दक्षिण के नवाब निजामुलमुल्क ने उस के विरुद्ध एक दल खड़ा करके फूट डलवाने की चेष्टा की। तिस पर बाजीराव ने, उस दल को ज़ोरदार शब्दों में प्रार्थना की; मुगल साम्राज्य का वृक्ष अब सूख गया है। तने को काटने से इस की शाखायें आप ही सूख जायेंगी। इस समय मौका है कि इस वृक्ष को जड़से उखेड़ कर अपने देश में हिन्दू राज्य स्थापित किया जाय। शिवा जी ने मान लिया और बाजीराव ने मालवा, गुजरात तथा बुन्देलखण्ड से चौथ मांगनी शुरू करदी। तत्पश्चात उस ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। दक्षिण से निजामुलमुल्क बादशाह की सहायता को बढ़ा परन्तु चम्बल नदी से फिर

गया और मालवा और नर्मदा तथा चम्बल का प्रदेश मराठों को देकर अपने प्राण बचाए।

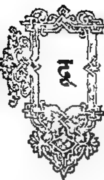
उस समय दिल्ली में मुहम्मदशाह राज्य करता था। वह बड़ा आराम पसन्द था उस के राज्य काल में संवत १७९६ में नादिरशाह ने दिल्ली पर आक्रमण किया। नादिरशाह एक साधारण पुरुष था। उस ने ईरान की गद्दी प्राप्त करली और काबुल पर अधिकार करने के बाद दिल्ली पर चढ़ आया। करनाल में शाही फौज ने उस का मुकाबला किया। मुहम्मद शाह की पराजय हुई। नादिरशाह दिल्ली मे दाखिल हुआ। उस ने तीन दिन तक सर्व-वध (कतल आम) करवाया, फिर लूट शुरू की। दो मास के बाद शाहजहां का बनाया हुआ तख्त ताऊस और बेशुमार जवाहरात तथा कोहेनूर लेकर वह लौटा। मुगल साम्राज्य का चिराग टिमटिमाने लगा। बङ्गाल और अवध नाममात्र को बादशाह के आधीन थे। दक्षिण में मराठों का राज्य था। मालवा और गुजरात भी उन के हाथ में थे। निजामुलमुल्क भी स्वाधीन हो गया।

बाजीराव बड़ा प्रतापी और शक्तिशाली सेनापति था। उस की मृत्यु पर उस का पुत्र बाला जी बाजीराव पेशवा हुआ। उस के समय में मराठों ने बङ्गाल पर आक्रमण किया। अलीवर्दी खां ने सामना किया, किन्तु वह मुर्शिदाबाद को उन के हाथों से न बचा सका।

नादिरशाह के मरने पर उस का एक सेना पति अहमद शाह काबुल और कन्धार का स्वामी बन बैठा। उस ने दो बार हमले करके पंजाब को अपने साथ मिलाया। दिल्ली में खलबली मचगई और वहा पर मराठों का जोर बढ़ता गया। उन की सहायता से ही राजा गद्दी पर बैठते और उन्हीं की इच्छा से उतारे जाते थे। मराठे दिल्ली के स्वामी बन चुके थे जब कि अहमदशाह अबदाली ने संवत् १८१७ में फिर आक्रमण किया और पानीपत की मशहूर लड़ाई में मराठा सेनाओं को पराजित किया। इसी चोट से बाला जी बाजीराव ने अपने प्राण त्याग दिये।



सिक्खों की उन्नति।



सरा धार्मिक पुनरुत्थान जो पीछे एक राजनैतिक शक्ति में तबदील हो गया सिक्खों का था। उस के नेता पञ्जाब के क्षत्रियों में से थे। गुरुनानक लाहौर के नजदीक एक गांव में कालू क्षत्री के घर पैदा हुआ। छुटपन में ही उस की रुचि वैराग्य और ईश्वरभक्ति की ओर थी। नानक ने धर्म सुधार और ईश्वर भक्ति का प्रचार आरम्भ किया। पञ्जाब पर उस के प्रचार का विशेष प्रभाव पड़ा। गुरु नानक के पीछे गुरु अङ्गद और उस के पीछे गुरु अमरदास गद्दी पर बैठे। चौथा गुरु रामदास था जिस ने अमृतसर नगरी की नींव रक्खी और इसे सिक्खों का केन्द्र स्थान स्थापित किया। गुरु रामदास का जन्म स्थान लाहौर था, बाल्यावस्थामें यह चने बेचा करता था। जब सिक्ख सङ्गत जाते हुए लाहौर से गुजरे तब वह भी उन के सङ्ग हो लिया। गुरु अमरदास की धर्मपत्नी ने बालक को देखकर गुरु से कहा कि हमें अपनी लड़की के लिए इस प्रकार का वर चाहिये। गुरु ने कहा अच्छा यही सही और उस का विवाह अपनी कन्या से कर दिया। गुरु अमरदास के पीछे वह गद्दी पर

बैठा । कहते हैं कि गुरु अमरदास की पुत्री बड़ी सदाचारिणी और श्रद्धावाली थी । एक दिन गुरु चौकी पर बैठे स्नान कर रहे थे, चौकी का पाया टूट गया । लड़की ने अपना हाथ उस स्थान पर दे दिया । स्नान समाप्त होने पर गुरु ने लहू की धारा बहती देखी । जब सारा वृत्तान्त सुना तो अत्यन्त प्रसन्न होकर वरदान देने की इच्छा प्रकट की । इस पर कन्या ने कहा कि गुरु की गद्दी मेरी सन्तान के अधिकार में रहे ।

उस के पुत्र गुरु अर्जुन हुए । जो प्रायः लाहौर में ही रहते रहे । उन्हों ने गुरू बन कर सिक्खों की धार्मिक पुस्तक ग्रन्थ साहब का सम्पादन किया । जहांगीर उन से नाराज था क्यों कि गुरू ने बादशाह के लड़के खुसरो को, जो अपने बाप से बागी हो गया था मदद की थी । जहांगीर को खबर मिली कि इस पुस्तक में इस्लाम के विरुद्ध कुछ शब्द लिखे गए हैं । जहांगीर के पूछने पर गुरू अर्जुन ने कहा कि पुस्तक को कहीं से खोल कर देख लिया जावे । पुस्तक ज्यों ही खोली गई उस में केवल परमात्मा की भक्ति का वर्णन था । फिर गुरू अर्जुन से कहा गया कि वह उस में कुछ ऐसे वाक्य बढ़ा दे जिन में हजरत मुहम्मद और इस्लाम की प्रशंसा हो । यह समय गुरु के आत्मिक बल की परीक्षा का था । गुरु के लिये दो रास्ते थे । या तो शाही दबाव के नीचे दब जाते या अपने धर्म

पर दृढ़ रहते। गुरु ने उत्तर दिया कि इस पुस्तक में जो कुछ है यह ईश्वर की प्रेरणा से लिखा गया है इसे घटा बढ़ा नहीं सकता। इस उत्तर पर गुरु को लाहौर में बुला कर उन्हें कई कष्ट दिये गये और फिर आज्ञा हुई कि गौ की खाल देह पर पहरें। उन्होंने रावी नदी के तट पर स्नान के लिये जल में प्रवेश किया और फिर बाहर न निकले। उन का पुत्र हरगोविन्द गद्दी पर बैठा। शारीरिक सौंदर्य में अद्वितीय, वीरता और साहस में अतुल तथा आत्मिक शक्ति और ज्ञान में ये असाधारण व्यक्ति थे। उन को मालूम था कि उन के पिता धर्म पर बलिदान हुए। उन्हों ने निश्चय कर लिया कि एक धार्मिक सम्प्रदाय बनाने से कार्य नहीं चलेगा। सिक्खों को एक राजनैतिक शक्ति बनाना होगा। उन्हों ने बैठने के स्थान तख्त को अकालबुङ्ग का नाम दिया जहां पर वे प्रति दिन "दरबार" लगाया करते थे। उन्हों ने अपने आप को "सच्चा बादशाह" कहलाना शुरू किया और सब सिक्खों से नियमित रूप से कर लेकर खजाने में जमा करना शुरू किया। वे स्वयं सब तरह के मुकद्दमों का फैसला किया करते थे।

ये सब बातें बादशाह के कानों तक पहुंची, बादशाह की आज्ञा से कई हजार फौज अमृतसर में रक्खी जाने लगी ताकि उन की बढ़ती हुई शक्ति पर दबाव रहे।

लाहौर के नवाब के साथ गुरू को कई वर्ष तक युद्ध करना पड़ा। अमृतसर पर कई बार हमला हुआ और उसे उजाड़ दिया गया। इन सब कष्टों के होते हुए भी सिक्खों की शक्ति बढ़ती गई। युद्ध में स्वय गुरु आगे बढ़ कर लड़ा करते थे। उन की वीरता एक चमत्कार समझी जाने लगी। उन की उदारता तथा सर्वप्रियता अद्वितीय थी। एक बार बादशाह ने गुरू को ग्वालियर के किले में कैद कर दिया। सैंकड़ों सिक्ख ग्वालियर जा कर किले की दीवारों को चूमने के पश्चात् लौट आते थे। अकस्मात् बादशाह बीमार हो गया। उसे डर था कि शायद उसकी बीमारी का कारण एक महात्मा को कैद करना था। इस लिये उस ने गुरु को छोड़ दिया। गुरू हर गोविन्द ने इस शर्त पर छूटना स्वीकार किया कि किले के सब कैदी छोड़ दिये जाये। चुनाचि ऐसा ही किया गया। इन में राजपूत राजा भी थे जो गुरू के साथ ही चले आये। गुरू से उन का प्रेम और अनुराग इतना था कि जब गुरु ने प्राण त्याग किये तब उन में से कई उन की चिता में जल कर मर गए।

गुरु हरगोविन्द का सौन्दर्य तथा आत्म शक्ति ऐसी प्रसिद्ध हो गई कि लाहौर के काज़ी की लड़की घर से भाग निकली। मियामीर फकीर ने उसे गुरु के पास पहुंचा दिया। वह उन की चेली बन गई। गुरु उसे ज्ञान की शिक्षा देते रहे। उस के नाम पर उन्हों ने अमृतसर में कौलसर बनवा दिया।

गुरु हरगोविन्द के परलोक गमन पर उन के पुत्र गुरू हरराय गद्दी पर बैठे। उन का बेटा रामराय दिल्ली में औरङ्गजेब से मिलने गया। औरङ्गजेब ने उस से प्रश्न किया कि "ग्रन्थ-साहिब" में ये शब्द क्यों लिखे हैं "मिट्टी मुसलमान की पेड़े पई कुम्हार। घड़ भाण्डे इट्टा किया जल्द करे पुकार।" रामराय ने डर कर कहा कि यहा मिट्टी "बेईमान की" है न कि 'मुसलमान की'। जब यह समाचार गुरू को मिला तब उन्हों रामराय का मुंह देखना भी न चाहा।

गुरु हरराय के बाद उन के लड़के गुरु हरकृष्ण बचपन में ही गद्दी पर बैठाए गए और दिल्ली में चेचक के होने पर परलोक सिधार गये। तब गद्दी के अधिकार के विषय में विचार होने लगा। गुरु हरगोविन्द के एक लड़के तेगबहादुर पटना में रहा करते थे, उन को बुलाकर गुरु बनाया गया। औरङ्गजेब के अन्याय का राज्य जोरों पर था। उस ने हिन्दुओं पर जजिया लगा दिया, काशी में विश्वनाथ जी के मन्दिर को गिराकर मस्जिद बना दी गई, हिन्दू मेले बन्द कर दिये गये, हिन्दू लोग इकट्ठे होकर बादशाह के पास गये। उस ने उन की कुछ परवाह न की और हाथी की सवारी के चलने का हुक्म दिया कई आदमी कुचले गये। इस पर सतनामी साधुओं का सम्प्रदाय बिगड़ बैठा और उस ने शाही सेना के एक दस्ते को पराजित कर दिया। मुसलमान सिपाही कहने लगे कि उन के

पास कोई जादू है। औरङ्गजेब ने अपनी सेना के। वास के लिये अपने हाथ से तावीज तैयार किये और शाही झण्ड से बांधे। बड़ी मुश्किल से यह विद्रोह दबाया गया। हिन्दुओं की अवस्था भी दीन थी। औरङ्गजेब के अन्याय से तङ्ग आकर कुछ ब्राह्मण चलकर गुरु तेग बहादुर के पास आये। गुरु तेग बहादुर की रगों में गुरु अर्जुन और हरगोविन्द का लहू बहता था। उन्हों ने कहा कि इन अत्याचार को रोकने के लिये किसी महात्मा की बलि की आवश्यकता है। और अपना सिर देने का निश्चय कर लिया। गुरु तेगबहादुर को दिल्ली बुलाकर कहा गया कि वह कोई करामात दिखायें। उन्हों ने एक कागज गले के साथ लपेट कर कहा कि तल्वार इस पर अपना असर न कर सकेगी। तलवार चलाई गई पर सिर शरीर से पृथक् जा पड़ा। कागज खोला गया उस पर यह लिखा था "सिर दिया पर सर न दिया।" इस के बाद गुरु गोविन्द सिंह गद्दी पर बैठे।

गुरु गोविन्द सिंह ने गद्दी पर बठते ही मुकाबले की तैयारी शुरू कर दी। सिक्खों में से क्षत्रिय पैदा करने के लिये उस ने एक बड़ा यज्ञ किया जो एक वर्ष तक होता रहा। उस की समाप्ति पर देवी के लिये बलिदान मागा गया। हजारों की संख्या में सिक्ख जमा थे, उन्हों ने समझा गुरु पागल हो गया है। इस लिये बहुत से उन्हें छोड़ कर चले गये। जो बाकी रहे उन में से पांच निकले जिन को एक २ करके तम्बू में बिठा

दिया गया और पांच बकरों का वध किया गया। यह खालसा का जन्म था जिस ने पञ्जाब के इतिहास में बड़ा हिस्सा लिया।

पञ्जाब के पहाड़ी राजा गुरु गोविन्द सिंह को सहायता देने पर तैयार न थे। उन को मुग़ल शक्ति से डर लगता था। गुरु गोविन्दसिंह अपने थोड़े से साथियों को लेकर शाही सेना के विरुद्ध कई वर्ष तक युद्ध करता रहा। उस के दो लड़के लड़ाई में मारे गये। दूसरे दो माता सहित पकड़े गये और बड़े साहस तथा निर्भयता दिखाते हुए सरहिन्द के किले की दीवारों में चुन दिये गये ऐसे २ बलिदान थे, जिन्हों ने कायर हिन्दुओं को मृत्यु से निर्भय कर दिया। गुरु गोविन्द ने कहा है, 'चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊं, तब ही नाम गोविन्द कहाऊं" और इसे पूरा भी कर दिखाया।

एक बार उन के साथी तङ्ग और निराश होकर घरों को वापस जाने पर तैयार हो गये। गुरु ने उस समय अपना आत्मिक-बल दिखाया, उन से पूछा "जब मैंने यह काम आरम्भ किया था तब क्या तुम मेरे साथ थे?" उत्तर मिला "नहीं"। तिस पर गुरु ने कहा कि जिस के भरोसे पर मैंने यह काम शुरू किया, वह अब भी मेरे साथ है और सदा रहेगा।

ये सिक्ख जब घरों को लौट कर गये तब उन की स्त्रियों ने अपने २ घर के द्वार बन्द कर दिये और कहा कि हम तुम्हारा मुंह नहीं देखना चाहतीं, तुम गुरु से विमुख होकर चले आये

हो। सब के सब वापिस गुरु की ओर चले। राह में मुसलमानों से लड़ते हुए उन्हों ने अपनी जानें दे दीं।

यह सुन कर गुरु वहां पहुचे तब उन में से एक अभी सिसक रहा था। उस ने गुरू से प्रार्थना की कि उस के साथियों का दोष क्षमा किया जाये। गुरू ने प्रसन्न हो कर उस स्थान का नाम मुकसर रक्खा।

चमकौर के किले की लड़ाई में जब गुरु का कोई साथी न रहा तब वे भेष बदल कर वहा से निकल पड़े। भटिण्डे के समीप उन से एक सिक्ख ने भेंट की। उस ने आदि गुरु का वचन कहा "नीले वस्त्र कपड़े पहरे तुर्क पठानी अमल भया।" गुरू गोबिन्द ने तत्काल ही उसे बदल कर कहा "नीले वस्त्र कपड़े फाड़े तुर्क पठानी अमल गया।" तिस पर उस सिक्ख ने गुरु का ध्यान रामराय की ओर दिलाया। गुरु गोविन्द ने कहा—"वह और बात थी, वह तबदीली डर के मारे की गई थी।"

दक्षिण में गुरू गोविन्दसिंह माधोदास वैरागी से मिले। वास्तव में वह पञ्जाब का रहने वाला एक राजपूत था। इसे शिकार का बहुत शौक था। एक दिन उसने हिरणी का शिकार किया। उस का पेट चीरने पर कईएक बच्चे निकले जो बाद में तड़प कर मर गये। इस वैरागी के मन पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह घरबार छोड़ कर वैरागी बन गया। दक्षिण में जा कर उस ने एक गद्दी बनाई। जब गुरू ने देश की दशा की ओर ध्यान दिलाया तब वह पञ्जाब को फिर लौटने पर तैयार

हो गया। वैरागी के नाम में जादू था। हैबयाग से पहले पहल जो मुसलमान सरदार उस के साथ रहने के लिये आये, वे सब उस के बाणों का लक्ष्य बने। कोई सरदार उस के विरुद्ध आने पर तैयार न होता था। वैरागी ने सरहिन्द जीता, किला गिराया, मसजिदों को नष्टभ्रष्ट किया और वह गार जला दिया जहां पर गुरु के लाल पकड़े गये थे। जहां कहीं जाता वह विजय पाता था। उस की सेना की सख्या लूट मार के लोभ से दिन प्रतिदिन बढ़ती गई। पहाड़ी राजे भी उस के सहायक हो गए, उस ने गुरदासपुर में अपना किला बनाया और लाहौर के अतिरिक्त पंजाब के बहुत से प्रदेश पर अपना अधिकार जमा लिया। बहादुरशाह स्वयं सेना ले कर आया लाहौर में उसकी मृत्यु हो गई। उस समय वैरागी का सतारा अरूज पर था।



माता सुन्दर कौर।



रागी जब पंजाब पर कब्जा कर रहा था तब दिल्ली में फरुखसियर तख्त पर बैठा। शाही वंश के अन्य सब शाहजादों के मारे जाने के बाद यह अकेला रह गया था। उस ने बैरागी को दूसरी चाल से वश में करना चाहा गुरु गोबिन्द की रानी माता सुन्दर कौर को उस ने अपनी ओर कर लिया और उस से बैरागी के विरुद्ध पत्र लिखवाये। बैरागी ने भी सिक्खों के समूह को जातीय रंग देने के लिये एक दो परिवर्तन किये। एक तो यह था कि युद्ध का जयकारा बजाय "वाह गुरु की फतह" के "धर्म की जय" कर दिया। माता सुन्दर कौर ने सिक्खों को यह लिखा कि या तो बैरागी नियमानुसार सिक्ख बने नहीं तो उस का साथ छोड़ दिया जाय। उस ने ऐसा करने से इनकार किया क्योंकि गुरु ने स्वयं उसे नेता बना कर भेजा था। इस से उस की सेना के दो दल होगये। उन में इतनी शत्रुता होगई कि कोई पांच हजार सिक्ख लाहौर के नवाब की सेना में आठ २ आने मासिक तनख्वाह पर सिपाही भरती होगये। बैरागी ने बहुतेरा कहा कि ऐसा करना अच्छा नहीं और उन्हें

मिल कर एक बार लाहौर को फतह कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् परस्पर निपट लिया जायगा। परन्तु सिक्खों ने न माना। जब बैरागी ने शेष सेना लेकर लाहौर पर आक्रमण किया तब बागबानपुरा के स्थल पर युद्ध हुआ, जिस में नवाब ने सिक्खों को आगे कर दिया। अपने साथियों को अपने विरुद्ध सजे हुए देख कर बैरागी के सिक्ख घबरा गये और लौट पड़े। बैरागी और उस के साथी गुरुदासपुर के किले में घिर गये। लगभग वर्ष पर्यन्त घेरा रहा। जब उन के पास भोज्य पदार्थ न रहे तब उन्हों ने घोड़े वगैरा मार कर खाने शुरू किये अन्त में बैरागी सात आठ सौ साथियों सहित पकड़ा गया और दिल्ली लाया गया।

फर्रुखसियर ने आज्ञा दी कि उन को भेड़ों की खाल पहना ऊंटों पर बिठला कर दिल्ली में फिराया जाय। तत्पश्चात् उन्हें तोप से उड़ा दिया जाय। एक बालक की माता ने बादशाह से प्रार्थना की कि उस का लड़का सिक्ख नहीं है, वह धोखे से पकड़ा गया है। बालक से पूछा गया। उस ने कहा कि मेरी माता गलत कहती है और वह स्वयं दौड़ कर तोप के सामने होगया। बैरागी लोहेके पिंजरे में कैद था। उसके बालक को काट कर उस के कलेजे के टुकड़े बैरागी के मुख पर फेंके गये। तत्पश्चात् लोहे की तपी हुई सीखों से उस के प्राण लिये गये।

अब सिक्खों को अपनी बेवकूफी जान पड़ी। फर्रुखसियर ने आज्ञा दी कि एक सिक्ख का सिर लाने वाले मनुष्य को १०)

रुपये इनाम मिलेगा। सब सिक्ख अपनी मातृ भूमि छोड़ कर पर्वतों और वनों में जा छिपे। ७५ वर्ष तक सिक्खों ने अपना नाम छिपाये रखा। जब नादिर शाह के आक्रमण ने मुगल राज्य को छिन्न भिन्न कर डाला तब सिक्खों ने दल बांध कर लूट मार करनी प्रारम्भ कर दी। प्रत्येक मनुष्य जो एक घोड़ा और तलवार ले आता था, दल का सभासद हो जाता था। गुजरावाले से लेकर अम्बाले तक इस प्रकार की १२ मिसलें बन गई।

नादिरशाह ने इन जवानों को देख कर पूछा 'तुम्हारे घर कहां हैं?' इन्हों ने उत्तर दिया कि घोड़े की पीठ पर। नादिर शाह को ख्याल हुआ कि ये बड़े भयानक हैं। कुछ ही वर्षों में पञ्जाब का बहुत सा प्रदेश इन के अधिकार में आगया और जब अहमदशाह अबदाली ने आक्रमण किया तब सिक्खों ने पानीपत पर उसका मुकाबला किया, यहां पर बहुत सेना मारी गई। जब मराठी सेना ने पञ्जाब पर हमला किया तब भी इन्हों ने उसका मुकाबला किया परन्तु रघुनाथ राव ने लाहौर को अपने कबजे में कर लिया। अहमदशाह अबदाली पञ्जाब को अपने अधिकार में समझता था। इस ख़बर को सुनते ही वह काबुल से चल पड़ा और पानीपत की मशहूर लड़ाई में उस ने मराठी सेनाओं को पराजित किया। इस युद्ध से भारतवर्ष के इतिहास में कई परिवर्तन हुए।

ठीक इसी समय अँगरेजों ने बङ्गाल पर अधिकार जमाया और मराठों ने दिल्ली पर अधिकार करके बङ्गाल पर आक्रमण करने की तैयारी की। परन्तु अबदाली के आक्रमण ने बङ्गाल और भारत वर्ष के इतिहास को पलट दिया।



ॲंगरेजों का अभ्युदय ।





रुपीय जातियों में से फ्रांसीसी और ॲंगरेजों ने ही अपने २ कारखाने भारत के समुद्री तट पर स्थापित किये थे। जैसी देश की राजनैतिक अवस्था उस समय थी, उसे देख कर इन योरुपीय जातियों के लिये असम्भव था कि उनके हृदय में इस देश को जीतने का ख्याल न पैदा होता। क्योंकि कई सदियों से ये लोग थोड़ी २ जमीन के लिये लड़ रहे थे। साधारण जनता के अन्दर अपने राजनैतिक अधिकारों का कोई विचार न रहा था। जो कोई भी ताकत से या धोखे से किसी तरह गद्दी पर बैठ जाता लोग उसे राजा या महाराजा मान लेते थे। इस का परिणाम यह निकला कि राज्य जो जाति के जीवन तथा रक्षा का आधार होता है, नष्ट भ्रष्ट होगया। जिस तरह पहले धार्मिक संसार में ब्राह्मणों ने साधारण लोगों को विद्या से वंचित रक्खा। और जिस का परिणाम यह हुआ कि विद्या को पहचानने वाले न रहने से ब्राह्मणों की सन्तान स्वयं विद्या से विमुख हो गई

क्योंकि अविद्वान और विद्वान ब्राह्मणों का एक सा आदर होने लगा इस लिये ब्राह्मणों ने विद्या दान का कष्ट अपने ऊपर लेना उचित न समझा।

नैतिक संसार में जब जनता की सम्मति बिलकुल न रही इस का फल यह निकला कि गवर्नमेण्ट खिलौना बन गई जिसे चालाक आदमियों ने जैसा चाहा नचा लिया। जैसे मदारी के हाथों में जादू होता है, वह मनुष्यों को नजरबन्द कर लेता है, उन की बुद्धि को चकरा डालता है और जिस तरह चाहता है हथकण्डे करता जाता है॥

राजा बनने के लिये कुल-क्रमागत राज्य का अधिकार भी जाता रहा। पहले पहल तो छोटे भाई या मन्त्री राज्य लेने का यत्न करने लगे। इस के पश्चात् दूसरे अफसर लोग उस में हस्तक्षेप करने लगे। इन का काम राजा के विरुद्ध दल बनाना हो गया।

योरपीय जातियों में सब से बड़ा गुण यह था कि वे स्व-जाति हित को सदा अपने आगे रखते थे, जब एक पुरुष एक नीति से काम करता तो उस के पीछे आने वाला भी उसे बराबर जारी रखता दूसरी ओर भारतीय केवल अपने व्यक्तिगत लाभ ही देखते थे। अपने सुख के लिये वे राजद्रोह को भी एक मामूली बात समझते थे। दूसरे शब्दों में एक फ्रांसीसी या अंगरेज की प्राप्त की हुई शक्ति उस के जाने के बाद भी

बढ़ती जाती थी। दूसरी ओर देसी राजा या नवाब की शक्ति उस के जीवन तक ही होती थी।

यह बात भी सर्वथा निर्मूल है कि अँगरेज़ कम्पनी यहा केवल व्यापार करना चाहती थी और दैवयोग से उसे देश का राज्य मिला। अँगरेज व्यापारियों ने आते ही देश की कुव्यवस्था जाच ली। उन्हों ने यह भी देख लिया कि भारतवर्ष का राजा दिल्ली में रहता था, बङ्गाल, मदरास आदि प्रदेशों पर उस का अधिकार नाम मात्र को था। वहा पर राज्य प्रबन्ध इतना कमजोर था कि थोड़ी सी फौज की मदद से उन पर कब्जा किया जा सकता था। सन् १६८९ में, जब कि औरङ्गज़ेब दक्षिण की लड़ाइयों में लगा हुआ था। अँगरेज कम्पनी ने कई जहाज सेना के इँगलेण्ड से मँगा कर चटगाव के साथ का प्रदेश अपने अधिकार में लाने का प्रयत्न किया। उन का बल पर्याप्त न था और औरङ्गजेब भी बड़ा चतुर था। उस ने उन को पराजित करने का इरादा कर लिया और सब अँगरेजों को देश से निकल जाने की आज्ञा दी। इस पर सूरत के अंग्रेज औरङ्गज़ेब के पास पहुचे और बड़ी नम्रता से क्षमा मागी। इस के बाद पच्चास वर्ष और बीत गये। मुगल बादशाही के टुकड़े २ हो गए। अंगरेज शनैः शनैः अपने कारखानों के साथ किले बनाते गये और सिपाही आदि रख

उन्हों ने अपनी सैनिक शक्ति की नींव डाल दी। फर्रुखसियर जैसा बादशाह दिल्ली की गद्दी पर बैठा जिस ने एक रोग हटाने के बदले कई गाव व सम्पत्ति आदि कम्पनी को दे दिया।

दक्षिण में अंगरेजों और फ्रांसीसियों की बस्तियां एक दूसरे के नजदीक थीं। सन् १७४८ ई० में योरप में अंगरेजों और फ्रांसीसियों में लड़ाई शुरू हुई। मद्रास के अंगरेजों ने फ्रांस की बस्ती पाण्डीचेरी पर आक्रमण करने का निश्चय किया पाण्डीचेरी के गवर्नर ने करनाटक के नवाब को लिखा कि अंगरेज भी उस की प्रजा हैं उन को लड़ाई करने से रोके। नवाब ने दस हजार सिपाही देकर अपने बेटे को भेजा। फ्रांसीसी सेना बहुत थोड़ी थी परन्तु उन के पास तोपें बहुत बड़ी थीं। एक तोप चली तो नवाब की सेना अपनी तोपों के ख्याल से समझने लगी कि दूसरी बार के गोली चलने में आधा घण्टा लगेगा। परन्तु जब उन्हों ने पांच २ मिनट के बाद गोले पड़ते देखे तब वे घबरा कर भागे। इस पहली लड़ाई में योरूपीय शस्त्रों की धाक बंध गई और देशी नवाब और राजा उन के बल से डरते हुए सहायता के लिये प्रार्थना करने लगे। फ्रांसीसी और अंगरेजों का मुकाबला होता रहा और चार वर्ष के बाद योरूप में सन्धि हो जाने के कारण यहां भी युद्ध बन्द हो गया।

पाण्डीचेरी का गवर्नर डूपले एक बड़ा राजनीतिज्ञ था। उस की यह इच्छा थी कि देश में फ्रांस की राजनैतिक शक्ति

हो और अंगरेज यहां से निकाल दिये जांय। उसे अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिये यह उपाय सूझा कि नवाबों के निज के झगड़ों की अग्नि को भड़का कर अपना प्रयोजन सिद्ध करे। यह अवसर उस को हैदराबाद के निज़ाम की मृत्यु पर मिल गया। निजामउलमुल्क की मृत्यु के पश्चात् उस का बड़ा लड़का नासिरजङ्ग गद्दी पर बैठा। परन्तु साथ ही उस के भतीजे ने भी गद्दी लेने के लिये यत्न करना आरम्भ किया। वह डूपले के पास सहायता के लिये पहुंचा। ऐसे ही एक सरदार चन्दा साहब करनाटक की नवाबी के लिये डूपले की सहायता का इच्छुक हुआ। डूपले दोनों की सहायता पर तत्काल उद्यत हो गया और फ्रांसीसी सेना उन के साथ भेज दी। परिणाम यह हुआ कि निजाम की पराजय हुई। मुजफ्फर जंग नया निजाम बना और उस ने बहुत सी जमीन और धन फ्रांसीसियों को दिया। डूपले करनाटक का गवर्नर बनाया गया और चन्दा साहब उसके अधीन नवाब नासरजंग और नवाब अनवरुद्दीन मारे गये। अनवरुद्दीन का पुत्र मुहम्मदअली त्रिचनापली को भाग गया। चन्दा साहब ने उसे वहां जा घेरा। तब उस ने अंगरेजों से सहायता मांगी। मद्रास में उस समय एक नौजवान अंगरेज क्लाइव था। छुटपन में वह शरारती और आवारा सा था। और कम्पनी के पास क्लर्क भरती होकर भारत में आया था। फ्रांसीसियों के साथ युद्ध के समय वह सेना में भरती हो गया।

और उस में उस ने विशेष योग्यता दिखाई। अब उस को यह सूझी कि क्योंकि चन्दा साहब त्रिचनापली को सेना लेकर गया हुआ है और करनाटक की राजधानी अरकाट बिलकुल खाली है यह समय अरकाट पर आक्रमण करने का बड़ा अच्छा है। इस विचार से यह थोड़ी सी गोरा और देसी फौज लेकर वहा जा पहुंचा। चन्दा साहब को यहा सेना भेजनी पड़ी। दो मास तक घेरा रहा। परन्तु क्लाईव की चतुरता के कारण उसे विजय प्राप्त हुई। तत्पश्चात मद्रास से सेना भगा कर उस ने त्रिचनापली पर आक्रमण किया। चन्दा साहब भाग गया और मुहम्मदअली करनाटक का नवाब बन गया। तब से ही अगरेज़ों की उन्नति आरम्भ हुई।

इस के कुछ ही वर्ष बाद बङ्गाल में एक घटना घटी। बङ्गाल का नवाब अलीवरदी खा सन् १७५५ ई० में मर गया। उस का कोई लड़का न था और दोहता सराजुद्दौला १९ वर्ष का युवक था। अलीवरदी खा ने उसे बड़े लाड़ से पाला था। उस बालक को न तो कुछ तजरुबा था न उस ने कभी कष्ट का सामना किया था। वह इतना सुन्दर था कि अलीवरदी खा उस के सौन्दर्य पर कविता किया करता था। अलीवरदी को अगरेज़ों की अवस्था भली भांति मालूम थी। उस ने मरते समय सराजुद्दौला को उन से सचेत रहने का उपदेश दिया।

अली वरदी की मृत्यु के बाद अंगरेजों ने कलकत्ता के किले की दीवारों को बढ़ाना शुरू किया। इसी से सराजुद्दौला को शङ्का हुई और उस ने दूत द्वारा यह कहला भेजा कि अंगरेजों को किला बढाना न चाहिये। दूत की कुछ परवा न की गई। सिराजुद्दौला सेना लेकर कलकत्ता पर चढ़ आया। सब अंगरेज जो वहां थे भाग गये और सिराजुद्दौला ने कलकत्ता पर अधिकार कर लिया। उन में से एक हालवल नामक अंगरेज ने भागने का प्रयत्न किया परन्तु उसे कोई नाव न मिल सकी। वह और उस के कुछ स थी पकड़े गये। छूट जाने पर एक वर्ष के बाद वह विलायत गय। उस ने अपना बड़प्पन जनता की दृष्टि में जमाने के लिये मन ही मन एक कथा जहाज में घड ली कि सिराजुद्दौला ने १४६ अंगरेजों को एक तङ्ग कोठडी में बन्द कर दिय था और रात को प्यास और गरमी के मारे सब मर गये। स्वयं हालवल ही बचा। उस कोठरी को काल कोठरी प्रसिद्ध किया गया।

कलकत्ता का यह समाचार मद्रास पहुंचा। वहां से क्लाइव सेना लेकर बङ्गाल को चल पड़ा और कलकत्ता आ पहुंचा। आते हुए उस ने नवयुवक नवाब से सन्धि में किसी अँगरेज के मारे जाने का कोई जिक्र नहीं है। ऊपर से सन्धि तो होगई परन्तु क्लाईव के मन में कुछ और ही बात थी। नवाब लौट गया। मुर्शिदाबाद में एक कारखाने में वारन हेस्टिंगज नामक

इधर दिल्ली की गद्दी पर शाहआलम सानी बैठा था। उस ने यह विचारा कि बङ्गाल की नवाबी में परिवर्त्तन उस की आज्ञा के बिना कैसे किया गया। अवध के नवाब शुजाउद्दौला की मदद लेकर वह बङ्गाल की ओर बढ़ा। शुजाउद्दौला तो बिना कुछ किये फिर कर वापस चला आया और शाही फ़ौज कुछ मुकाबला न कर सकी। मीरजाफर ने चिनसरा के डच लोगों से सेना मँगवाई परन्तु वह अंगरेज़ों का कुछ न बिगाड सकी। इस पर भी मीरजाफर को उतार कर मीरक़ासिम को गद्दी पर बिठाया गया।

मीर क़ासिम कुछ समय तक अन्दर ही अन्दर अपना बल बढ़ाता रहा। उसकी इच्छा थी कि मैं किसी तरह अँगरेज़ों के आधीन न रहूं। उसने अपनी सेना को अँगरेज़ी फौज की तरह शस्त्र विद्या की शिक्षा देकर मजबूत बनाना चाहा और अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद से दूर मुंगेर ले जाकर अंग्रेज़ों से युद्ध का बहाना ढूंढने लगा। इस समय कम्पनी के नौकर सारे व्यापार को अपने हाथों में लेकर लोगों का धन लूटना चाहते थे। ज़बरदस्ती सब चीजें सस्ती लेते थे और उन्हें बहुत महँगे मोल पर बेचते थे। क्योंकि उन के माल पर कुछ महसूल न लगता था, इस लिये मी अमीर क़ासिम ने सब व्यापारियों के माल पर कर माफ़ कर दिया। इस से कम्पनी के नौकर जल गए और मीर क़ासिम को किसी तरह हटाने की फ़िक्र में पड़ गए। मीर क़ासिमने शाह आलम और शुजाउद्दौला से सहायता मांगी।

जून १७५७ ई० में प्लासी के युद्ध में क्लाईव ने विजय पाई और मीरजाफर नवाब बनाया गया। सिराजुद्दौला पकड़ा गया। उसे मीरजाफर के पुत्र ने मरवा डाला। क्लाईव आदि को करोड़ों रुपये सहायता के बदले दिये गये। वे धन लेकर घर चले गये। उन की जगह दूसरे आदमी कौंसिल के सभासद आ बने। उन में से एक हालवल भी था। जिस ने क्लाईव की तरह बहुत धन लेना चाहा। मीरजाफर दे न सकता था। उन्हों ने यह विचारा कि उस के स्थान में किसी और को नवाब बना कर अपनी जेब भरनी चाहिये। इस प्रयोजन लिये उन्हें मीरजाफर का दामाद मीरकासिम मिल यह उन्हें रुपये देकर मीरजाफर के स्थान में नवाब राजी था। अब पता लगा कि नवाबी वास्तव में किन चली गई।

इधर जब बङ्गाल का यह हाल था तब मद्रास और फ्रांसीसियों में फिर परस्पर युद्ध आरम्भ का कारण यह था कि योरुप में इन्हीं जातियों जङ्ग शुरू हो गया था। फ्रांस ने फिर एक अँगरे भारत से निकालने का प्रयत्न फोर्ड ने बड़ी बहादुरी दिखा कर लिया और दक्षिण नष्ट होगई।

इधर दिल्ली की गद्दी पर शाहआलम सानी बैठा था। उस ने यह विचारा कि बङ्गाल की नवाबी में परिवर्त्तन उस की आज्ञा के बिना कैसे किया गया। अवध के नवाब शुजाउद्दौला की मदद लेकर वह बङ्गाल की ओर बढ़ा। शुजाउद्दौला तो घबरा कर वापस चला आया और शाही फौज कुछ मुकाबला न कर सकी। मीरजाफर ने चिनसुरा के डच लोगों से सेना मंगवाई परन्तु वह अंगरेज़ों का कुछ न बिगाड़ सकी। इस पर भी मीरजाफर को उतार कर मीरकासिम को गद्दी पर बिठाया गया।

मीर कासिम कुछ समय तक अंदर ही अंदर अपना बल बढ़ाता रहा। उस की इच्छा थी कि मैं किसी तरह अंगरेज़ों के आधीन न रहूं। उसने अपनी सेना को अंगरेज़ी फौज की तरह शस्त्र विद्या की शिक्षा देकर मजबूत बनाना चाहा और अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद से दूर मुंगेर ले जाकर अंग्रेज़ों से युद्ध का बहाना ढूंढने लगा। इस समय कम्पनी के नौकर सारे व्यापार को अपने हाथों में लेकर लोगों का धन लूटना चाहते थे। ज़बरदस्ती सब चीज़ें सस्ती लेते थे और उन्हें बहुत महँगे मोल पर बेचते थे। क्योंकि उन के माल पर कुछ महसूल न लगता था, इस लिये मी अमीर कासिम ने सब व्यापारियों के माल पर कर माफ कर दिया। इस से कम्पनी के नौकर जल गए और मीर कासिम को किसी तरह हटाने की फ़िक्र में पड़ गए। मीर कासिमने शाह आलम और शुजाउद्दौला से सहायता मांगी।

जून १७५७ ई० में प्लासी के युद्ध में क्लाइव ने विजय पाइ और मीरजाफर नवाब बनाया गया। सिराजुद्दौला पकड़ा गया। उसे मीरजाफर के पुत्र ने मरवा डाला। क्लाइव आदि को करोड़ों रुपये सहायता के बदले दिये गय। वे धन लेकर घर चले गये। उन की जगह दूसरे आदमी कौंसिल के समासद आ बने। उन में से एक हालवल भी था। जिस ने क्लाइव की तरह बहुत धन लेना चाहा। मीरजाफर दे न सकता था। उन्हों ने यह विचारा कि उस के स्थान में किसी और को नवाब बना कर अपनी जेब भरनी चाहिये। इस प्रयोजन के लिये उन्हें मीरजाफर का दामाद मीरकासिम मिल गया। यह उन्हें रुपये देकर मीरजाफर के स्थान में नवाब बनने पर राजी था। अब पता लगा कि नवाबी वास्तव में किन हाथों में चली गई।

इधर जब बङ्गाल का यह हाल था तब मद्रास में अँगरेजों और फ्रांसीसियों में फिर परस्पर युद्ध आरम्भ हो गया। उस का कारण यह था कि योरूप में इन्हीं जातियों में सात साला जङ्ग शुरू हो गया था। फ्रांस ने फिर एक बार सेना भेज कर अँगरेजों को भारत से निकालने का प्रयत्न किया। परन्तु इस युद्ध में कर्नल फोर्ड ने बड़ी बहादुरी दिखा कर उत्तरी सरकार की भूमि पर कबजा कर लिया और दक्षिण में फ्रांसीसियों की शक्ति सर्वथा नष्ट होगई।

इधर दिल्ली की गद्दी पर शाहआलम सानी बैठा था। उस ने यह विचारा कि बङ्गाल की नवाबी में परिवर्तन उस की आज्ञा के बिना कैसे किया गया। अवध के नवाब शुजाउद्दौला की मदद लेकर वह बङ्गाल की ओर बढ़ा। शुजाउद्दौला धोखा कर वापस चला आया और शाही फौज कुछ मुकाबला न कर सकी। मीरजाफर ने चिनसुरा के डच लोगों से सेना मगवाई परन्तु वह अंगरेज़ों का कुछ न बिगाड़ सकी। इस पर भी मीरजाफर को उतार कर मीरक़ासिम को गद्दी पर बिठाया गया।

मीर क़ासिम कुछ समय तक अन्दर ही अन्दर अपना बल बढ़ाता रहा। उसकी इच्छा थी कि मैं किसी तरह अंगरेज़ों के आधीन न रहूं। उसने अपनी सेना को अंगरेज़ी ढंग से शस्त्र विद्या की शिक्षा देकर मजबूत बनाया था और अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद से दूर मुंगेर ले जाकर अंगरेज़ों से युद्ध का बहाना ढूंढने लगा। इस समय कम्पनी के नौकर अपने व्यापार को अपने हाथों में लेकर लोगों का धन लूटा करते थे। जबर-दस्ती सब चीजें सस्ती लेते थे और उन्हें बहुत महंगे मोल पर बेचते थे। क्योंकि उन के माल पर कुछ महसूल न लगता था, इस लिये मीर क़ासिम ने सब व्यापारियों के माल का कर माफ कर दिया। इस से कम्पनी के नौकर चिढ़ गए और मीर क़ासिम को किसी तरह हटाने की फ़िक्र में लग गए। मीर क़ासिमने शाह आलम और शुजाउद्दौला से मित्रता की

कलकत्ता की अंग्रेजी कौंसिल ने मीर जाफर को क़ैद से निकाल कर फिर नवाब बना कर मीर कासिम से युद्ध आरम्भ कर दिया। यह सब युद्ध आसान थे क्योंकि बङ्गाल में धन बहुत था जिस से सेना तैयार की जासकती थी और मीर जाफर जैसे आदमी हर समय कठपुतली बनने को तैयार थे। अङ्गरेजी सेना मुंगेर की ओर बढ़ी। मीर कासिम पटने को भाग गया। कुछ समय अनन्तर सन् १७६४ में बक्सर में युद्ध हुआ। इस में अङ्गरेजी सेना को विजय प्राप्त हुई। शुजाउद्दौला लौट गया। मीर क़ासिम कहीं भाग गया और शाहआलम ने अपने आप को अङ्गरेजों के रहम पर छोड़ दिया। इङ्गलेण्ड से क्लाईव भारतवर्ष आया। तब युद्ध समाप्त होचुका था। क्लाईव सीधा प्रयाग आ पहुंचा। यहा सब के बीच सन्धि हुई जिसमें बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा की दीवानी बादशाह की ओर से अंगरेजों को दीगई, यद्यपि उड़ीसा उस समय मराठों के अधिकार में था। गङ्गा और यमुनाके मध्य की भूमि शाहआलम को दी गई और शुजाउद्दौला को युद्ध का खर्च देना पड़ा। शाह आलम एक पैंशनख़ार के समान वहा रहने लगा। इस के कुछ समय बाद मीरजाफर मर गया और अंगरेज स्वतन्त्र रूप से बङ्गाल के स्वामी बन गये। क्लाईव ने कम्पनी के प्रबन्ध के सुधार के लिये बहा यत्न किया और फिर इंगलैंड वापस चला गया।

सन् १७७० से ७८१ तक बंगाल में घोर अकाल पड़ा। बहुत से लोग मर गये। कम्पनी को अपने प्रबंध के सुधार की बड़ी आवश्यकता हुई और उन्होंने वारन हेस्टिंगस को बंगाल का गवर्नर बना कर भेजा।

वारनहेस्टिंगस ने आते ही नवाबी के पुराने राज्य को समाप्त करके भिन्न भिन्न जिले स्थापित किये, अंगरेज कलक्टर रक्खे और साथ ही अदालतें बनाईं जिन में पण्डित और मुल्ला कानून समझाने के लिये नौकर रक्खे। वारनहेस्टिंगस बंगाल का प्रबन्ध-सुधार करके कम्पनी की आय को बढ़ा रहा था, कि उस के सामने एक घटना हुई। वह यह थी कि शाह-आलम मराठों के बुलाने पर प्रयाग छोड़कर दिल्ली चला गया।

हम देख चुके हैं कि जब अहमदशाह अबदाली सरहद से भूमि विजय करता आता था तब तीसरे पेशवा बाला जी बाजी रावने अपने भाई रघुनाथ राव को सेना देकर पंजाब भेजा। रघुनाथ राव ने लाहौर पर आकर अधिकार जमा लिया। अहमदशाह समाचार पाते ही बड़ी सेना लेकर चढ़ आया और पानी पत पर बड़ा भारी युद्ध हुआ, जिस में राजपूत और जाट मराठों के पक्ष में थे और मुसलमान अबदाली की सहायता करते थे। पेशवा ने सब हिन्दू राजाओं को पत्र लिखे थे कि सब मिलकर प्रयत्न करें और अपने देश को पठानी आक्रमणों से स्वतन्त्र कर लें।

मराठी सेना पराजित हुई। उन के दो लाख से सैनिक मारे गये। पेशवा को समाचार मिला दो रत्न टूट गये हैं और दूसरे जवाहिरात के विनाश की कोई सीमा नहीं रही। पेशवा इस को सुनते ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। उस का पुत्र माधव राव बड़ा राजनीतिज्ञ था। दस वर्ष के अन्दर उस ने मराठा शक्ति को फिर वैसा ही बना लिया और मराठा सेना ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। अब उन को भय हुआ कि उन्हों ने बड़ी कठिनता से एक आपत्ति से देश को बचाया है अब बंगाल से उन को एक और आपत्ति का सामना करना पड़ेगा, इस लिये निर्जीब रुहेले को अपने साथ लेकर उन्हों ने शाहआलम को दिल्ली बुला भेजा ताकि उसे अंगरेजों के हाथ से निकाल कर अपने अधिकार में रख सकें।

--- :o: ---

मराठे और अँगरेजों का मुकाबला।





ब अँगरेज कम्पनी को बङ्गाल में राजनैतिक सत्ता प्राप्त हुई उस समय मुगल राज्य का अन्त हो चुका था। मराठों ने दूसरी बार दिल्ली को अपने अधिकार में कर लिया और उन की सेनायें दूसरी बार उत्तरी भारत में फैल गईं। पानीपत के महान युद्ध में महा अधोगति को प्राप्त होकर मराठों का फिर पुनर्जीवित हो जाना प्रकट करता है कि मराठा शक्ति निःसन्देह एक जातीय जीवन का परिणाम थी। यदि उस का आधार किसी व्यक्ति विशेष पर होता तो पानीपत के युद्ध में ही यह नष्ट हो जाती। इस पुनरुत्थान में माधव राव चौथे पेशवा की योग्यता और प्रयत्नशीलता का बहुत भाग है।

मराठा इतिहास में माधव राव का चरित्र बड़ा ही दिलचस्प और विचित्र है। उस में सब ब्राह्मण गुण थे। उस के सब विचार और कर्म ब्राह्मणों की भांति थे। १८ अथवा १९ वर्ष की आयु में वह गद्दी पर बैठा। उस को योगाभ्यास का

वड़ी लगन थी और प्रातः काल वड़ी देर तक समाधि लगाये बेठा रहता था। प्रसिद्ध विद्वान राम शास्त्री उस का मन्त्री था। एक दिन राम शास्त्री को प्रातः काल पेशवा से मिलने के लिये बहुत समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। जब माधव राव समाधि से उठा तब राम शास्त्री ने कहा कि यदि तुम को योग-साधन करना है तो अच्छा हो कि राज्य कार्य छोड़ दो और ब्राह्मणों के कर्म में लग जाओ। राज्य करना तो क्षत्रिय का धर्म है। इस के लिये क्षत्रिय बनना पड़ेगा। माधव राव ने क्षमा मांगी और आगे के लिये अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा की और इस में कोई सन्देह नहीं कि वह अपनी प्रतिज्ञा में पूरा उतरा। परन्तु उस की आयु बहुत थोड़ी थी। अभी उसे दस वर्ष गद्दी पर बैठे हुए थे कि उस को तपेदिक हो गया। उस का एक छोटा भाई नारायण राव और चाचा रघुवा था। उस ने नारायण राव का हाथ मरते समय रघुवा को दिया। उस से प्रार्थना की कि वह राज्य चलाने में उस की सहायता करे। एक अंगरेज मराठा ऐतिहासिक वड़ी करुणाजनक भाषा में लिखता है कि इस नवयुवक पेशवा की मृत्यु ने मराठा राज्य की उस नींव पर कुल्हाड़ा रख दिया जिसे अवदाली की शक्ति उखेड़ न सकी थी।

यह भयङ्कर मृत्यु उस समय हुई, जब मराठा सेनापति सिंधिया ने, जो दिल्ली का अधिकारी था, शाह आलम को

दिल्ली बुलाया, ताकि उसे दिल्ली के सिंहासन पर बिठाये। शाह आलम को देहली के सिंहासन पर बिठाना केवल एक बहाना था। सच्ची बात तो यह थी कि मराठों को उस समय यह निश्चय हो गया था कि भारत वर्ष के राज्य के लिये अब इस नई उन्नतिशील शक्ति अर्थात् अंगरेजों का मुकाबला करना पड़ेगा और इस मुक़ाबले के लिये आवश्यक था कि शाह आलम को उन के हाथ से निकाला जाता। सन् १७६० में भी जब अंगरेजों ने बङ्गाल में अधिकार जमाया था तब मराठों की इच्छा बङ्गाल पर आक्रमण करने की थी। वे इस की तैयारी भी कर रहे थे। यह अंगरेजों की खुश किस्मती थी कि उस समय अहमदशाह अबदाली ने आक्रमण कर दिया और मराठों को बङ्गाल का ख्याल छोड़ देना पड़ा और अंगरेजों को अपनी ताक़त मजबूत करने का अवसर मिल गया।

वारन हेस्टिंगस भी यह चाल भली भांति समझता था। उसे भारत वर्ष के बारे में काफी तजरबा था और इस में कुछ सन्देह नहीं कि उस की असाधारण बुद्धि और योग्यता ने अंगरेजी राज्य को न केवल बचा लिया प्रत्युत उस की नींव दृढ़ करदी। वारन हेस्टिंगस बहुत देर तक भारत वर्ष में रह चुका था। वह जानता था कि यहां के देश वासियों के लिये चाहे वे राजकर्मचारी हों या साधारण आदमी व्यक्तिगत स्वार्थ के सामने जातीय लाभ कुछ सत्ता न रखते थे। वे

सर्वदा स्वार्थ परायण होकर अपना मतलब सिद्ध करने के लिये जाति और देश के लाभ को त्यागने के लिये उद्यत हो जाते थे। इस एक नीति पर आचरण करके उस ने मराठों के सारे प्रयत्न को निष्फल सिद्ध कर दिया।

मराठों को जब औरंगजेब के मुकाबले पर कई वर्षों तक अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिये लड़ना पड़ा तब उन का कोई शक्ति शाली नेता न था। इस लिये भिन्न २ सरदारों का उत्साह और दिलेरी के बढाने के लिये उन्हों ने यह निश्चय किया कि जो सरदार नया स्थान व प्रदेश जीते वह स्वयं उस पर अपना राज्य करे और अपना सम्बन्ध केन्द्रस्थ राज्य से जोड़ रखे। इस प्रकार मराठों के चार बड़े राज्य स्थापित हो चुके थे। गुजरात में गायकवाड़ का, मालवा में सिन्धिया का, मध्यभारत में होल्कर का, और नागपुर मे भासला का। केन्द्रस्थ राजसत्ता पेशवा के हाथ में थी। इन्हें मराठा संघ (मराठा कानफीडूसी) कहते है। यह चारों मराठा सरदार ब्राह्मणों की अपेक्षा छोटी जाति के थे। कहा जाता है कि जात पात के कारण उन में पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष था और इसी ईर्षा ने मराठा साम्राज्य को निर्बल करके नष्ट भ्रष्ट कर दिया। यह बिलकुल गलत है। मराठा सरदार यद्यपि छोटी जातों से उत्पन्न हुए तथापि उन्हों ने रणक्षेत्र में अपने शौर्य्य और पराक्रम से शत्रुओं को जीता था इस लिये उन का अधिकार और पदवी क्षत्रियों की सी हो

गई और ब्राह्मण पेशवा सदा उन का पद क्षत्रिय के समान स्वीकार करने पर उद्यत थे।

मराठा साम्राज्य के दौर्बल्य के कारण राजनैतिक थे। ऐसे राष्ट्र संघ की शासन-प्रणाली जिस में सब अङ्ग बराबर और उन्हें एक रखने वाली कोई केन्द्रस्थ शक्ति न हो कभी सफल नहीं हो सकती। ऐसी शासन प्रणाली में एक शक्तिशाली सत्ताविशेष के अभाव में भिन्न भाग या व्यक्ति अपना २ स्वार्थ देखते हैं और किसी आपत्ति के अवसर पर पृथक् होजाने के लिये उद्यत हो जाते हैं। राष्ट्र संघ के स्थान पर फीडरल शासन प्रणाली चिरस्थायी होती है। भिन्न२ राज्यों का ऐसा संगठन जिस में कोई एक सत्ता सब पर प्रभाव डालने और राज्य करने का साहस और बल रखती हो फीडरल कहलाता है। यदि उन को किसी शक्ति का भय न हो तो कोई सम्बन्ध ऐसा दृढ नहीं हो सकता जो पृथक् २ राज्यों को एक स्थान में संयुक्त रख सके। मराठा-संघ में यही दोष था, यही उस की निर्बलता थी इसी के कारण मराठों का अधःपतन हुआ। यह दोष तो पीछे से प्रकट हुआ पर मराठा साम्राज्य के विनाश का एक विकट कारण रघुरा की स्त्री आनन्दी बाई थी।

आनन्दी बाई सदैव अपने पति के भाई बाला जी बाजी राव पेशवा से जलती और उस की स्त्री से लड़ती रहती थी। माधवराव की मृत्यु के बाद उस का छोटा भाई नारायण राव

गद्दी पर बैठा। रघुवा भी तीसरे पेशवा का भाई था। आनन्दी बाई का कहना था कि जब नारायण राव पेशवा बन सकता था तो उस का पति जो पेशवा का भाई था, क्यों राज गद्दी से वञ्चित रक्खा जाय। जब उस का सारा प्रयत्न अपने पति के लिये गद्दी प्राप्त करने में निष्फल हुआ तब उस ने नारायण राव के विरुद्ध गुप्त षड्यन्त्र रचना आरम्भ किया। कुछ सिपाहियों को इस बात के लिये तैयार किया कि वे नारायण राव का वध कर दें। ऐसी घटना को हम मराठा साम्राज्य के विनाश का बीज कह सकते हैं। सिपाही नारायण राव का वध करने के लिये महल में दाखिल हुए तो वह डर कर भागा। वह अभी बच्चा था इस लिये अज्ञान वश दौड़ कर अपने प्राण बचाने के लिये रघुवा से लिपट गया। रघुवा उस से पल्ला छुड़ा कर सीढियों पर चढ गया। बड़ी निर्दयता के साथ नारायण राव का वध किया गया।

पूना में यह समाचार बिजली के समान फैल गया। इस से सब के हृदय काँप गये। इतना अत्याचारी होने पर भी रघुवा पेशवा बन गद्दी पर बैठ गया और एक बार आनन्दीबाई की [illegible] ठी हुई। परन्तु एक ब्रह्महत्या के दोषी को लोग [illegible] बना हुआ न देख सकते थे। रामशास्त्री ने सार्व सम्मति रघुवा को बतादी। उस ने यह भी कहा कि [illegible] की सम्मति में तुम्हारे पाप का प्रायश्चित यह

गद्दी पर बैठा। रघुवा भी तीसरे पेशवा का भाई था। आनन्दी बाई का कहना था कि जब नारायण राव पेशवा बन सकता था तो उस का पति जो पेशवा का भाई था क्यों राज गद्दी से वञ्चित रक्खा जाय। जब उस का सारा प्रयत्न अपने पति के लिये गद्दी प्राप्त करने में निष्फल हुआ तब उस ने नारायण राव के विरुद्ध गुप्त षड्यन्त्र रचना आरम्भ किया। कुछ सिपाहियों को इस बात के लिये तैयार किया कि वे नारायण राव का वध कर दें। ऐसी घटना को हम मराठा साम्राज्य के विनाश का बीज कह सकते हैं। सिपाही नारायण राव का वध करने के लिये महलों में दाखिल हुए तो वह डर कर भागा। वह अभी बच्चा था इस लिये अज्ञान वश दौड़ कर अपने प्राण बचाने के लिये रघुवा से लिपट गया। रघुवा उस से पल्ला छुड़ा कर सीढ़ियों पर चढ़ गया। बड़ी निर्दयता के साथ नारायण राव का वध किया गया।

पूना में यह समाचार बिजली के समान फैल गया। इस से सब के हृदय काँप गये। इतना अत्याचारी होने पर भी रघुवा पेशवा बन गद्दी पर बैठ गया और एक बार आनन्दीबाई की छाती ठंडी हुई। परन्तु एक ब्रह्महत्या के दोषी को लोग पेशवा बना हुआ न देख सकते थे। रामशास्त्री ने सार्व सम्मति रघुवा को बतादी। उस ने यह भी कहा कि की सम्मति में तुम्हारे पाप का प्रायश्चित यह है कि

चिता बनाकर जीवित ही अपने आप को उस में जला दो। जब रघुवा ने उसे अस्वीकृत किया तब रामशास्त्री ने कहा कि "मैं तुम्हारे जैसे पापी के राज्य में न रहूंगा।" वह उसी समय काशी को चला गया।

बेचारे रघुवा का मन्द भाग्य ! थोड़े समय के अनन्तर नारायणराव की स्त्री ने एक बच्चे को जन्म दिया। सब लोगों ने उसे पेशवा की गद्दी पर बैठाना चाहा और सार्वजनिक सम्मति को क्रियारूप में लानेवाला एक पुरुष नाना फरनवीस पूना दरबार में था। साधारण अवस्था से उठकर इस ने वहां ऊँचा दर्जा प्राप्त किया था। उस समय समस्त पूना में सब से अधिक योग्य और बड़ा राजनीतिज्ञ यही पुरुष था। वह उस बच्चे पेशवा का संरक्षक नियुक्त हुआ। रघुवा घबरा गया और उस ने पूना से भागकर बम्बई में अंगरेज़ों की शरण ली।

बम्बई में चिरकाल से अंगरेज़ कम्पनी का व्यापार होता था। बम्बई का टापू इंगलैण्ड को पुर्तगाल के द्वारा बादशाह चार्लस के दहेज में मिला था। वहां के अंगरेज़ों ने जब मद्रास और बंगाल में राजनैतिक शक्ति को बढ़ते देखा तब उनके मन में सदा से विचार तरंगें हिलोरें मार रही थीं, कि उन्हें भी कोई ऐसा अवसर उपस्थित हो, जब वह अपनी सत्ता को स्थापित कर सकें। उन की ओर से मास्टिन नामक एक अंगरेज़ पूना दरबार में राजदूत के रूप में रहता था। उसका

काम दरबार के सारे काम, ब्योरे तथा अवस्था से अपने उच्चाधिकारियों को सूचित करना था। पूना दर्बार में जब परस्पर में झगड़ा हुआ तब उसे अपनी प्रयोजन सिद्धि के लिये सुअवसर जान उस ने रघुना को किसी तरह समझा बुझाकर बम्बई भेजा। बम्बई के अँगरेज सालसेट और वसीन के इलाके लेने की प्रतिज्ञा पर रघुना की सहायता करने पर तैयार हो गये। उन्होंने कलकत्ता को फोजी सहायता के लिये लिखा। वारन हेस्टिंगस ने उन की सहायता करना मनजूर कर लिया। उसे इस बात का पता पहले ही लग चुका था कि शाह आलम को दिल्ली बुलाकर मराठे अँगरेजों को निकालने के लिये विशेष उद्यम कर रहे थे। वारन हेस्टिङ्गस को अब ऐसी शक्ति का मुकाबला करना था जो भारतवर्ष में अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहती थी। बम्बई के अँगरेजों के प्रस्ताव की सहायता से वह मराठा राज्य के अन्दर फूट डलवा कर उसे निर्बल कर सकता था, और वह ऐसे अवसर को अपने हाथ से खो देने वाला आदमी न था।

——:o:——

नाना फ़रनवीस



म राठा राज्य के सौभाग्य से उन के नेतृत्व के लिये नाना फरनवीस एक ऐसा पुरुष उत्पन्न होगया, जो नीति में तत्कालीन भारत में किसी से कम न था। उस ने समझ लिया कि अंग्रेजों की सारी शक्ति लगा कर मराठों के विरुद्ध चाल चलने में यह उद्देश्य है, कि समस्त भारत में निष्कण्टक राज्य करें। इस लिये उस ने यह निश्चय किया कि सब प्रान्तों में जहां अंग्रेजी सत्ता स्थापित होने की सम्भावना है, उसे नष्ट कर के देश को विदेशियों के हाथ से एक बार बचा लिया जावे।

इस अभिप्राय से नाना फरनवीस ने एक साजश कर के अंग्रेजों का मुकाबला करने का निश्चय किया। उस ने मराठा सरदारों को बुला कर इस बात पर तैयार किया और नागपुर के भोंसला को अपने पूर्ण बल से बङ्गाल पर चढ़ाई करने के लिये कहा। इधर फ्रांसीसियों से पत्र-व्यवहार कर उन से समुद्री सेना की सहायता की याचना की। उस ने दक्षिण के निज़ाम हैदराबाद को अपने साथ मिलाया।

शाह आलम मराठों के साथ था, परन्तु इन सब से कहीं बढ कर सहायक मैसूर का अधिपति हैदरअली था। हैदरअली भी एक साधारण अनपढ़ आदमी था उस का पिता सेना मे सिपाही था। हैदरअली ने युवावस्था में कुछ साथी अपने साथ इकट्ठे किये और लूट मार करता हुआ उन का सरदार (नेता) बन गया उस के साथी जो कुछ लूट लाते थे, उस का आधा भाग उसे देते आधा अपने पास रखते थे। उस की सत्ता और ख्याति इतनी बढ़ गई कि मैसूर के राजा ने उसे अपनी सेना मे नियुक्त कर लिया और बढते २ एक दिन वह मैसूर का राजा बन गया। मैसूर राज अभी बाल्यावस्था में था। उस का चचा उसे हटा देना चाहता था। हैदरअली ने राजा की सहायता करके उस के चचे को हटा दिया और फिर राजा को कैद करके स्वयं राज्यका स्वामी बन गया। नवाब और निज़ाम उसे नीच कुलोत्पन्न जान उस से घृणा करते थे और उसे उन के साथ लड़ाई झगड़ा करना पड़ता था नवाब करनाटक और निज़ाम ने अंग्रेज़ों और मराठों को अपने साथ मिला कर हैदरअली की शक्ति को नष्ट करना चाहा। हैदर अली सब से लड़ना न चाहता था। उस ने मराठों को कुछ रुपया देकर उन के साथ सन्धि कर ली और फिर अकस्मात सेना लेकर मद्रास जा पहुंचा। मद्रास की सेना दूर गई थी। इस लिये गवर्नर भयभीत हो गया और हैदरअली के कथनानुसार उस

से परस्पर सहायता और मैत्री की प्रतिज्ञा कर ली। परन्तु जब हैदरअली को उन की सहायता की आवश्यकता पड़ी तब अंगरेज़ों ने कोरा जवाब दिया। हैदरअली उस प्रतिज्ञा भङ्ग के कारण अंगरेज़ों से अन्दर ही अन्दर जलता था। अब उस के पास नाना फरनवीस के दूत पहुंचे और उस ने नाना की तजवीज़ पर अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट की।

जब यह साजिश पक्की होगई तब हैदरअली ने अंगरेज़ों के विरुद्ध दक्षिण में एक घोषणा पत्र निकाला। उस का सार यह था कि विदेशी लोग सौदागरी के लिये इस देश में आये थे। अब इस के स्वामी बन बैठे हैं। और हमें क्षण भर के लिये चैन नहीं लेने देते। सब हिन्दू मुसल्मानों को परस्पर ऐक्य कर के उन्हें बाहर निकाल देना चाहिये। जब हैदरअली ने आक्रमण किया तब सब मन्दिरों और मसजिदों में उस की सफलता के लिये प्रार्थनाएं की गईं। वह एक लाख सेना लेकर अंग्रेज़ों के खिलाफ गया। उन का इलाका उजाड़ दिया और उन की फौज घेर ली।

इधर महादाजी सिन्धिया और होलकर पेशवा की सहायता में अंगरेज़ी सेना के मुकाबले में लड़ने पर उद्यत थे, जो बम्बई से रघुबा को गद्दी पर बैठाने के लिये चली। महादाजी सिंधिया बड़ा वीर सेनापति था। वह सदा रघुबा के नाम पर धिक्कार और तिरस्कार देता था। अंगरेज़ी सेना की राह में लोग गाँव उजाड़ कर भाग गये। विवश होकर सभी फौज घिर गई और

उन को महादा जी के वश में आना पड़ा। बड़ी याचना के पश्चात् रघुवा को उससे सुलह करनी पड़ी। महादाजी सिंधिया उस समय धोखे में आगया। रघुवा फिर उस की निगरानी से भाग गया और लड़ाई जारी रही।

केवल नागपुर के राजा मोदा जी भोंसला ने अपने कर्तव्य का पालन न किया। भोंसला की ३० हजार मराठा फौज उसके बेटे चमन जी की अध्यक्षता में बंगाल की सीमा पर पड़ी रही और दो बरस तक अपना ही खर्च करती रही। पूना सरकार को तो मोदाजी यह विश्वास दिलाना चाहता था कि उस ने अपना प्रतिज्ञानुसार फौज बंगाल को रवाना कर दी है और इधर वारनहेस्टिंगस के साथ एक साजश करके उसे यह निश्चय दिलाया कि वह कभी बंगाल पर आक्रमण न करेगा। इस कारण वारन हेस्टिंगस को अपनी सेना दूसरी दिशाओं को भेजने का मौका मिल गया। फौज का एक दस्ता उस ने बम्बई को भेजा। दूसरा दस्ता सिन्धिया के उत्तरी प्रदेश पर आक्रमण करने के लिये नियुक्त किया, जिस से सिन्धिया को अपने प्रदेश की रक्षार्थ आने की चिन्ता पड़ी। कुछ समय के बाद शेष सेना इकट्ठी कर के उस ने सर आइरकूट की अध्यक्षता में हैदरअली के मुकाबले पर मद्रास भेजी।

मोदा जी ने भारत में अंगरेजी राज्य की जड़ों को पक्का कर दिया। उस का मुख्य कारण यह था कि यद्यपि वह मराठा

संघ का सदस्य था तथापि उस के ऊपर कोई एक प्रभावशाली सत्ता न थी। वारनहेस्टिंगस ने उसे लोभ दिया कि तुम भोंसला घराज होने के कारण मराठा राज्य के वास्तविक अधिकारी हो। मोदा जी का एक ब्राह्मण मन्त्री था। उस का एक साला वारनहेस्टिंगस ने एक बड़ी वेतन देकर बिना किसी काम के अपने पास रख लिया और उस का आदर सत्कार करता रहा। अवसर पाने पर उस के द्वारा उस मन्त्री से पत्र-व्यवहार करके मोदा जी से मित्रता जोड़ ली।

उधर उत्तर की ओर गोहर का राना मराठों से जलता था। उस ने अंगरेजों से दोस्ती करके सिन्धिया के इलाके पर आक्रमण किया। जब सिन्धिया को अपनी राजधानी में आपत्ति दीखी तब पूना छोड़ कर उस ने उत्तर को आने का संकल्प कर लिया। मद्रास में हैदरअली की सफलता की कोई सीमा न रही। उस ने निरन्तर कई वर्ष तक लड़ाई के अनुभव के पश्चात् बङ्गाल से गये हुए सेनापति आइर कूट की फौज को घेर लिया। उस के पास रसद का सामान खतम हो गया। गावों की भूमि खोद २ कर उन्हों ने अनाज निकाला वह भी समाप्त हो गया। कई दिनों तक फौज भूखी रही। फ्रांसीसी बेड़ा हैदरअली की सहायता के लिये समुद्र में प्रस्तुत था। कलकत्ता से आए हुए रसद के जहाज कई दिनों तक प्रतीक्षा करते रहे। पर बेड़े के डर से वे समुद्र तट पर न आसकते थे।

बङ्गाल की सारी सेना का खातमा होजाता अगर फ्रांसीसी बेड़े का कप्तान झण्डा उठा कर न चल देता। हैदरअली ने उस से प्रार्थना की कि वह थोड़ी देर और ठहर जावे। उस के देश और जाति के शत्रुओं का नाश होने वाला था। न जाने उसे क्या लोभ दिया गया कि उस ने हैदरअली की एक न सुनी। रसद का सामान पहुच गया। सेना के अन्दर नई जान आगई। युद्ध फिर छिड़ गया। पर हैदरअली की मृत्यु ने सारी तजवीजें नष्ट भ्रष्ट कर दीं। हैदरअली ही अकेला नानाफरनवीस का सच्चा सहायक और हितैषी था। इस में सन्देह नहीं कि शुरू में निजाम भी साथ था। पर थोड़ी कोशिश के बाद वारनहेस्टिंगस के लिखने पर वह निश्चेष्ट बैठा रहा। नाना फरनवीस ने हैदर अली का मृत्युसमाचार पाते ही अंग्रेजों से सन्धि कर लेना उचित समझा। इस सन्धि-पत्र के अनुसार दिल्ली में सेन्धिया प्रभुत्व को स्वीकार किया गया। अंग्रेजों ने रघुवा का साथ छोड़ दिया और शेष परिस्थिति ज्यों की त्यों रही यह सन्धि सल्नई में १७८१ में हुई।

इन सारे युद्धों के लिये वारनहेस्टिंगस को बहुत ज्यादा रुपयों की आवश्यकता पड़ी। अतः उस ने अवध की बेगमों और बनारस के राजा चेतसिंह से सहायतार्थ रुपये जबरदस्ती वसूल किये। इस कारण इंगलैण्ड में उस पर अभियोग चलाया गया, जिसमें वह अन्त में बरी कर दिया गया।

पूना राज्य में गृह-कलह का बीज बोया गया जो दिन प्रति दिन भयङ्कर रूप धारण करता गया। उस के विपरीत अंग्रेजी सरकार एक जीती जागती जातीय संस्था सी बनी थी। मराठा सरकार की नीति का मूलाधार विशेष मनुष्यों का व्यक्तिगत स्वार्थ था और वह उन्हीं आदमियों की निजी सत्ता तक परिमित था। अंगरेजी सरकार की नीति एक सुसम्बद्ध, क्रमबद्ध, जीवित शक्ति पर निर्भर थी। अधिकारी वर्ग के व्यक्तित्व का उस से कोई सम्बन्ध न था। दोनो के मुकाबले में स्थायी और सुनियमित नीति ही अवशिष्ट रह सकती थी और उसे ही सफलता प्राप्त होती थी।

वारनहेस्टिंग्स चला गया और उस की जगह कार्नवालिस आया। उस स्थान में केवल एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से परिवर्तन हो गया, नीति और गवर्नमेण्ट वही रहे। परन्तु दूसरी तरफ जब १७०० में नाना फरनवीस मर गया। तब मराठा सरकार उसके साथही नष्ट होगई। कार्नवालिस ने मराठा और निजाम को अपने साथ कर लिया और हैदरअली के पुत्र सुलतान टीपू से लड़ाई कर उस का बहुत सा प्रदेश छीन लिया।

टीपू सुलतान फ्रांस के विप्लव और नैपोलियन से पूरी सहानुभूति रखता था। वह उनकी शासन प्रणाली को अपने राज्य में लाना चाहता था। उसने नैपोलियन को बुला भेजा कि वह

भारत में अपनी सेना सहित आवे और अँगरेज़ों को हिन्दुस्थान से बाहिर कर दे।

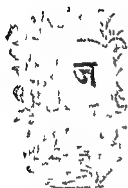
१८०१ में लार्ड वैलज़ली गवर्नर जनरल बन कर भारत में आया। आते ही उसने देश की आन्तरिक परिस्थिति को समझ लिया। उसे फ्रास की ओर से भय था। अत उसने राजाओ को अपने वश मे लाने का एक नया ढग निकाला। उसने कहा कि यदि वे अँगरेज़ो से मैत्री रखना चाहते हैं तो आत्म रक्षा के लिये अँगरेज़ी सेना को अपने खर्च पर रक्खें। निज़ाम और अवध के नवाब ने यह शर्त स्वीकार कर ली। बाकी रहे मराठे। उस समय मराठा साम्राज्य तीन नवयुवकों के हाथ में था। रघुना का बेटा बाजीराव दूसरा पेशवा था। पुराना तजरबाकार और शूरवीर सेनापति महादाजी मर चुका थ और उस का स्थानापन्न उन का दोहता दौलतराव सेन्धिया राज्य गद्दी पर बैठा। टिकाजी होलकर का उत्तराधिकारी यश वन्तराव होलकर भी नवयुवक ही था। उन मे परस्पर ईर्ष्या-द्वेष था। यशवन्तराव ने पूना पर चढ़ाई कर दी। बाजीराव ने सेन्धिया से सहायता मागी और अपने पिता के नक्शे क़दम चल कर अँगरेज़ों से सहायता की—याचना की। उन से सन्धि करली और वह नियम स्वीकृत किया, जिस से सहायक सेना रखना आवश्यक था। अब लार्ड वैलज़ली ने, सेन्धिया को वह शर्त मानने के लिये मजबूर किया। सेन्धिया ने लड़ाई शुरू कर

दी। होलकर चुप चाप बैठा रहा। अन्त को विवश होकर उसने भी अंग्रेजों से सन्धि करली। वेलजली ने यशवन्तराव को दबाना चाहा। होलकर सेन्धिया को सहायतार्थ लिखता रहा पर उन ने कोई उत्तर न दिया। इसी घटना का वर्णन करते हुए एक इतिहास लेखक ने सच लिखा है कि पृथ्वीराज और जयचन्द के बाद इतनी शताब्दियां बीत जाने पर भी हिन्दुओं ने न कोई नई बात सीखी, न अपने पुराने स्वभाव को छोड़ा। सेन्धिया के पराजित करने पर अंग्रेज दिल्ली के स्वामी बन गए, यद्यपि भरतपुर का घेरा १८०३ तक जारी रहा क्योंकि यह किला बड़ा पक्का और मजबूत था। दूसरे युद्ध में पहली स्थिति बदल गई अब देश में मराठों का स्थान अंग्रेजों ने लेलिया।



अहल्या बाई

जीजा बाई।



हां हम एक तरफ आनन्दी बाई का चित्र देखते हैं वहां हमें मराठा जाति में ऐसी महिलाएं भी दीखती हैं जो सच्ची देवियां कही जासकती हैं।

शिवाजी के बनाने में उस की मा जीजा बाई का भाग कम न था। तीन बरस की उमर से वह अपनी मा और गुरु के पास रहा। उस के पिता ने दूसरा विवाह कर लिया था। तब शिवा जी पूना में पिताकी जागीर में अपनी माता के साथ रहता था।

शिवाजी की माता का हृदय धार्मिक भावों से भरा था। वह चाहती थी कि उस का बेटा धर्म की रक्षा करने वाला हो। अभी शिवाजी ने जन्म नहीं लिया था कि उस की मा ने एक बार स्वप्न में देवी के दर्शन किये। देवी ने कहा "तुम्हारा पुत्र राजा बनेगा वह गौओं तथा ब्राह्मणों की रक्षा करेगा।" ऐसा स्वप्न कोई साधारण स्त्री न देख सकती थी। यह बात प्रकट करतीहै कि शिवाजी की मा अपने पुत्र का क्या बनाना चाहतीथी।

ऐसी देवियों में से एक इन्दौर की रानी अहल्या बाई है। इन्दौर की कथा समझने के लिये हमें थोड़ा सा और मराठा इतिहास जानने की आवश्यकता होगी। शिवाजी की नीति थी कि किसी सरदार को जागीर न दी जाय। वह इनाम आदि देता था लेकिन किसी को राज्य का अधिकार न देता था। उस का शासन [illegible] के हाथ में था जो अष्ट प्रधान कहलाते थे।

स्वतन्त्रता के युद्ध के समय राजा राम ने आज्ञा दी कि जो सरदार जितना इलाका जीते उसे वह जागीर में दिया जाय। इस समय इस बात का बड़ा अच्छा असर पड़ा। बड़े २ मराठा सरदारों ने मालवा, उत्तरी भारत और दक्षिण का प्रदेश जीत लिया। तारा बाई के समय में जब दो दल बने तब बालाजी विश्वनाथ ने सब सरदारों को इकट्ठा करके समझाया कि वह एक ओर अपना राज्य बनालें, नहीं तो आपस के झगड़ों में सब कुछ बरबाद हो जायगा। बालाजी विश्वनाथ महामन्त्री या पेशवा बनाया गया। उस का बेटा बाजीराव बड़ा वीर और राजनीतिज्ञ था। किन्तु उस ने राजा राम की नीति पर चलना ही उचित समझा। मराठा साम्राज्य की एकता के लिये यह एक भारी भूल थी।

बाजीराव के सेवकों में मल्हारराव होलकर, रानुजी सेंधिया और गोविन्दपन्त बुन्देले थे। अन्तिम पुरुष उस का भोजन बनाया करता था। एक बार खाना बनाने के लिये कहीं लकड़ी

या आग जलाने का सामान न मिला। गोविन्दपन्त ने एक जगह मुरदा जलता देखा। वहाँ पर उस ने चावल पकाए और बाजीराव के सामने रक्खे। जब बाजीराव को यह बात मालूम हुई तब उस ने गोविन्दपन्त को सरदार घनाश्वर झांसी का इलाका दिया। गङ्गाधरराव उस का पोता था। उस की रानी लक्ष्मीबाई थी।

रानुजी को ग्वालियर का सरदार नियत किया। इस का बेटा महादाजी मराठा साम्राज्य का सब से बड़ा जनरल हुआ है। मल्हारराव होलकर को इन्दौर का इलाका दिया। रानुजी तो पानीपत के युद्ध में अन्य बड़े सरदारों के साथ मारा गया। मगर मल्हारराव वहा से भाग निकला था, वह देर तक जिंदा रहा। माधवराव को अपने चचा रघुनाथराव से मुकाबला करना पड़ा। मल्हारराव ने माधवराव को सलाह दी कि भाग कर जान बचा लेनी चाहिये। माधवराव ने बड़े साहस और अक्लमन्दी का जवाब दिया "हम ने सुना था कि आप पानीपत में भागे हैं किन्तु हमें विश्वास न होता था। आज पता लगा है कि आप जरूर भागे होंगे।"

मल्हार राव सन् १७७० ई० के करीब मारा गया। उसका बेटा खाण्डेराव पहले ही मर चुका था मल्हार राव की मृत्यु पर खाण्डेराव की धर्मपत्नी अहल्याबाई गद्दी पर बैठी। वह अभी १९, २० वर्ष की युवती थी। रूप लावण्य में वह बड़ी

सुन्दर थी। उस ने बीस साल तक राज्य किया। इस यौवन में इतना धन और राज्य होते हुए उस ने बड़ी सरलता और पवित्रता का जीवन व्यतीत किया। महाराष्ट्र में इसे साधवी कहा जाता है अर्थात् वह एक बड़ी देवी थी।

अहल्याबाई स्वयं दरबार किया करती थी खुद सब पर कर लगाया करती थी और स्वयं ही न्याय किया करती थी। वह इतनी धर्मात्मा थी कि ऐसा कोई हिन्दु तीर्थ नहीं था जहां पर उस के नाम का सदाव्रत या दान जारी न था।

उस का बड़ा सेना नायक टिका जी होलकर था। एक अवसर पर रघुनाथ राव पजाब से वापस लौटते हुए इन्दौर गया और बहुत सा कर वसूल करना चाहा। अहल्या बाई ने कहा कि इतना कर अनुचित है। रघुनाथ राय फौज लेकर लड़ाई के लिये तैयार होगया अहल्या ने स्त्रियों की एक सेना तैयार कर ली और मैदान में पहुंच कर सन्देश भेजा कि "तुझे स्मरण रहे कि अगर तू जीत गया तो कुछ आश्चर्य न होगा। लेकिन अगर स्त्रियों की फौज ने तुम पर विजय प्राप्त कर ली तो तुम्हारे लिये यहां कोई ठिकाना नहीं रहेगा।" रघुनाथ राव इस से बड़ा खुश हुआ और उस ने सब कर छोड़ दिया।

संसार भर में सियाम ही एक देश है जहां पर फौज में अभी तक स्त्रियां काम करती हैं। उस का कारण यह है कि एक बार बर्मा निवासियों ने सियाम पर आक्रमण किया।

राजा और उस के सिपाही सब हार गये। तब वहां की स्त्रियों ने फौज बनाकर अपने देश को शत्रुओं से बचा लिया। इस लिये वहा पर स्त्रियों का पद पुरुषों से ऊंचा समझा जाता है अहल्या बाई ने वैसी ही मिसाल इन्दौर में कायम की। उस की स्मृति में अभी तक एक अवसर पर स्त्रियों की फौज तैयार की जाती है।

सिक्खों और अंगरेज़ों का मुकाबला



रणजीत सिंह।



स समय अंगरेज़ और मराठे भारत के राज्य के लिये परस्पर युद्ध कर रहे थे तब पंजाब में सिक्ख अपनी राजधानी स्थापित करने में लगे हुए थे हम ने देखा है कि जब मुग़ल साम्राज्य औरंगज़ेब की मृत्यु और घरेलू झगड़ों के कारण निर्बल होने से नादरी विजेताओं के आक्रमणों से चूर२ हो रहा था सिक्ख नेताओं ने डेरों में इकट्ठे होकर पंजाब को बारह मिसलों में बांट दिया था।

उन की शक्ति तलवार, शारीरिक बल, पारस्परिक ऐक्य और दूसरों की लूटमार पर आश्रित थी। इसी तरह हिन्दू जाटों ने भरतपुर आदि रियासतें स्थापित कर लीं। मिसलों की स्थापना से पहले वीर बैरागी ने पंजाब में हिन्दू राज्य वापस लाने का यत्न किया परन्तु उस की यह इच्छा उस के साथ ही चली गई। उस समय एक ही ख्याल सब जगह काम

करता दिखाई देता था कि जिस किसी तरह से हो सके साधन की परवाह न करते हुए राज्य बना लेना चाहिये। खालसा में एक बात अत्यन्त प्रशसनीय थी कि जहा कहीं उन्हें समाचार मिलता था कि अमुक स्थान पर अथवा अमुक पुरुष पर अत्याचार हुआ है या वह दुखित और पीड़ित है उन की औरतें व बच्चे छीन गये हैं तो उसी समय सब मिसलों के खालसा सिपाही इकट्ठे हो कर लड़ने मरने पर तैयार हो जाते थे। उन्हा ने क्षत्रिय का काम अपने ऊपर ले लिया और सब सिंह शूरवीर सूरमा बन गये। परन्तु उस के साथ हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि यह राज्य शक्ति को भी अपने हस्तगत करना चाहते थे। उस समय का ध्यान रखते हुए उन की यह इच्छा स्वभाविक थी।

इन बारह मिसलों का बल दिन प्रति दिन बढ़ता गया। बैसाखी और दीवाली के दिन सब लोग अमृतसर में इकट्ठे होते थे। अपनी २ मिसलों के झगड़ों का निर्णय करते और अपनी विजय वृद्धि के प्रस्ताव निश्चित करते थे। लाहौर नगर अहमदशाह अबदाली का सूबा था। १७०५ में एक सिक्ख सिरदार जस्सासिंह कलाल ने लाहौर को विजय कर लिया और अपने नाम का सिक्का चलाया जिस पर यह शब्द "अहमद का सूबा जस्सासिंह ने फते किया" अंकित थे। अहमदशाह सेना लेकर आया। सिक्ख लाहौर छोड़कर भाग

गए और वह लौट गया। वापस पहुंचते ही वह मर गया और उस के चार पुत्रों में परस्पर फसाद हो गया। हर एक तख्त का अधिकारी बनने की चेष्टा करता था। सिक्खों ने फिर लाहौर पर अधिकार जमा लिया। जमानशाह सेना लेकर रवाना हुआ। वापसी पर चनाव में कुछ तोपें उस की डूब गईं। गुजरानवाले मिसल के सरदार रणजीतसिंह ने जो कि अभी नौजवान ही था वह तोपें निकलवा कर जमानशाह को पहुंचा दीं। जमानशाह उस से इतना प्रसन्न हुआ कि उसे लाहौर का सूबा इनाम में दे दिया रणजीतसिंह फौज लेकर आया और दूसरे सिक्खों से लाहौर छीन लिया।

रणजीतसिंह को पक्का निश्चय हो गया था कि सिक्ख सत्ता केवल तब ही स्थिर रह सकती है जब कि सब मिसलों को मिला कर एक सूत्र में बांधा जाय। उस ने भिन्न २ तरीकों से किसी को विजय करके किसी को दोस्ती से और किसी से विवाह सम्बन्ध करके बारह में से नौ मिसलों को अपने कब्जे में कर लिया। सतलुज के पार की तीन मिसलें पृथक रह गईं। रणजीत सिंह सदा कहा करता था कि खालसा की हकूमत है, और अपने आप को खालसे का सेवक ही कहता था। रणजीत सिंह कुछ पढ़ा लिखा न था परन्तु आदमी को पहचानने की उस में ईश्वरदत्त विचित्र बुद्धि थी। उस ने

सिफरा हिन्दुओं और मुसलमानों में से अपने दरबारी चुन कर नियुक्त किये । उस की अपनी मिसल के कुछ लोग उस के बड़े अनुरागी, सहायक और शूरवीर अफसर थे । जिस में से गुजरात (पंजाब) के दीवान मोकमचन्द का वंश उस के राज्य का बड़ा भारी स्तम्भ था । मिश्र दीवान चन्द तोप खाने का मुख्याधिकारी था । गुजरानवाला का हरि सिंह नलवा उस का विख्यात जनरल हुआ ।

रणजीत सिंह का दूसरा काम यह था कि उस ने मुलतान, डेराजात, पेशावर, कश्मीर और सूबों पर चढ़ाइयां करके उन्हें अपने साथ शामिल किया । काबुल के झगड़ों के कारण शाह शुजा भाग कर रणजीतसिंह के पास आया और उस से अपनी काबुल की राजगद्दी को वापिस दिलाने के लिये सहायता मांगी । रणजीतसिंह ने उस से शर्तें कीं । उन में से दो यह थीं । अफगानिस्तान में गोवध को बन्द कर दिया जाय और सोमनाथ के मन्दिर के सरूप लौटा दिये जायें जो महमूद अपने आक्रमण के बाद साथ ले गया था । इसी अवसर पर उस ने शाह शुजाह को तङ्ग करके कोहे नूर का हीरा भी ले लिया । अंगरेजों के दिल्ली में रहने के कारण उसे सदा भय लगा रहता था कि किसी दिन उस की सब बनी बनाई राज्य-सम्पत्ति अंगरेजों के हाथ में न चली जाय । यशवन्त राव होल्कर भाग कर उस के पास सहायता की

याचना करने आया परन्तु उस समय उस की कुछ ताक़त न थी। इस लिये उस ने यशवन्त राव को पंजाब छोड़ने पर बाधित किया।

सतलुज पार की तीन फुलकिया रियासतों (पटियाला, नाभा तथा जींद) को वह अपने संगठन में लाना चाहता था उधर दिल्ली से अँगरेजों के दूत भी उन के पास पहुंचे। तब सरदारों ने घेर कर सलाह की। एक सरदार बोल उठा कि रणजीतसिंह है हैजा अंग्रेज हैं तपेदिक, तपेदिक हैजे से अच्छा है कुछ देर जी तो लेंगे। उन्होंने अंग्रेजों के साथ सन्धि करली। जब अंग्रेजों को फ्रांस के साथ युद्ध करते हुए नपोलियन से भय हुआ कि वह ईरान की तरफ से भारत पर आक्रमण करेगा तब उन्हों ने रणजीतसिंह के पास दूत भेजा और उस से दोस्ती करली। उन की यह दोस्ती रणजीतसिंह की मृत्यु तक कायम रही। १८३९ में रणजीतसिंह मर गया और उस का पुत्र खड्गसिंह राज सिंहासन पर बैठा। खड्गसिंह में न तो कोई वैयक्तिक गुण था और न ही योग्यता। चार बरस भी व्यतीत न हुए थे कि उस को भी मृत्यु का ग्रास बनना पड़ा। उस का बेटा नौनिहालसिंह बड़ा बहादुर और प्रतापी और अपने पितामह की प्रति था। वह पेशावर से वापस लाहौर आया। पंजाब का दुर्भाग्य कि जब श्मशान से चौथे के दिन खड्गसिंह की अस्थियां उठाकर

ला रहे थे तब दरवाजे की छत गिर पड़ी और नौनिहाल सिंह भी अकाल मृत्यु को प्राप्त हुआ।

अब लाहौर में तीन दल बन्दिया हो गईं। एक दल तो खड़गसिंह की रानी चन्द्र कौर का सहायक था दूसरा शेरसिंह का जो रणजीत सिंह का पुत्र था। तीसरा रानी जिन्दा का जो दलीप सिंह की माता थी।

चन्द्र कौर को थोड़े ही दिन बाद एक दासी के द्वारा मरवा दिया गया। उस का परिणाम यह हुआ कि उसके पक्ष के सरदारों ने जिन्हें सन्धयावाला सरदार कहते थे महाराजशेर सिंह को जो गद्दी पर बैठा था एक बन्दूक देने के बहाने से गोली चला कर मरवा डाला। अब दलीपसिंह को सिंहासन पर बिठा दिया गया। परन्तु सब अधिकार उस की माता के अधीन थे। उस की माता का भाई जवाहरसिंह जो बड़ा दुष्ट और आचार-हीन था राज्य का एक अधिकारी बन गया। उस ने साजश करके महाराजा रणजीतसिंह के दो दूसरे बेटों को मरवा डाला ताकि राज्य सिंहासन के लिये कोई दावादार न रहे। इस पर खालसा फौज भड़क उठी।

इस समय खालसा का बड़ा जोर हो गया था वह विधि पूर्वक पञ्चायतों का निर्वाचन करते थे। पञ्चायत ने जवाहर सिंह को कतल की सजा देने का निश्चय किया। जवाहरसिंह महाराजा दलीपसिंह को हाथी पर बिठाकर साथ ले आया।

खालसा अदालत की ओर से उसे नीचे उतरने के बाद गोली से मार देने का हुक्म हुआ। जवाहरसिंह मारा गया परन्तु रानी जिन्दाँ ने सकल्प कर लिया कि वह उस खालसा का समूलच्छेद करेगी जिस ने उस के भाई को मृत्यु मुख में पहुँचाया है। लालसिंह और तेजसिंह के साथ जो जिन्दाँ के मन्त्री थे उस ने सलाह गाँठ ली कि अँगरेजों की सहायता से खालसा के बल को छिन्न भिन्न कर दिया जाय।

अँगरेज उधर अम्बाले तक पहुँच गये थे वे भी अपने लिये अवसर देख रहे थे। उन को जब इस परिस्थिति का ज्ञान हुआ तब सेना इकट्ठी करके आगे बढ़े। इधर खालसा फौज को जिसे नेपोलियन के जनरलों ने खूब कवायददान बना दिया था और जिस की संख्या चालीस हजार के लगभग थी बहकाया गया कि अगरेज़ पंजाब पर हमला करने आ रहे हैं। खालसा रणजीत सिंह की समाधि पर इकट्ठे हुए और सब ने शपथ खाई कि अँगरेजों को महाराज के राज्य में कदम न रखने देंगे। लालसिंह और तेजसिंह ने कहा कि हम इस शर्त पर कमान करेंगे अगर युद्ध काल में पञ्चायतों को बन्द कर दिया जाय। उसे सब संगत ने स्वीकार कर लिया।

उधर से अंग्रेज फौज आ रही थी। दूसरी तरफ से खालसा जो खुद ही सिपाही खुद ही बोझ उठाने वाले आप ही रसद ढोने वाले और आप ही पुल बाँधने वाले इनजीनियर थे, सत

लज दरया के पार जापहुंचे । मुद्की, फिरोज शाहर और सुब राओं की लड़ाइयों का वर्णन लम्बा है । खालसा की शूरवीरता के चमत्कार देख कर अंग्रेज चकित होगये । मुद्की में मीलों तक खालसा पीछे हटते और लड़ते चले गये मगर पीठ नहीं दिखाई । फीरोज शाहर में अंग्रेजी फौज सब कुछ समाप्त कर बैठी । गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग खुद मैदान में आपहुंचा था । यदि लालसिंह चाहता तो अंग्रेजी फौज को कैद कर लेता परन्तु उस ने उस को पीछे हटने की आज्ञा दी । अंग्रेज अफसर तो कहते थे हमारा राज्य गया और लालसिंह मन में कुछ और ही ठाने था वह तो खालसा को नष्ट करने के लिये आया था न कि अंग्रेजी फौज को । हा ! इस अभागे भारत के इतिहास में कई मीरजाफर हुए हैं ।

सुबराओं में तेजसिंह स्वयं भाग आया और किश्तियों के पुल में से किश्तियां डुबो दीं ताकि कोई बच कर न आसके । शामसिंह अटारी वाले ने कफन पहन कर अद्वितीय वीरता दिखाई । साधारण जनता में अभी तक प्रसिद्ध है कि जिन्दा ने खाल्सा के लिये बारूद की बोरियों के स्थान में सरसों की भरी हुई बोरियां रवाना की थीं ।

जिन्दा की कल्पना मिथ्या थी । जब लाहौर में अंग्रेजों ने अपने आप को महाराजा दिलीपसिंह का संरक्षक बनाया तो उसे मालूम हुआ कि खाल्सा की बरबादी के साथ उस ने सिक्ख

राज्य को भी नष्ट करा लिया है। थोड़े ही समय के बाद उस न अटारी के सरदारों को साथ मिला कर साजिश की उस का परिणाम दूसरा सिक्ख युद्ध हुआ, जिसमें दीवान मूलराज मुल्तान वाले ने भी हिस्सा लिया और सरदार शेरसिंह ने चेलिया वाले में अंगरेजी सेना पर विजय प्राप्त की। पर विजय के बाद पीछा न किया। इस लिये गुजरात की लड़ाई में सिक्ख सेना हार गई। उस का एक कारण यह बताया जाता है कि उस समय सिक्खों का पुराना शत्रु काबुल का अमीर दोस्त मुहम्मद अंगरेजों के विरुद्ध लड़ने को आया था। परन्तु वह लोभवश हो कर अंगरेजों के साथ मिल गया। पंजाब अंगरेजी राज्य से मिला दिया गया। महाराज दिलीपसिंह और रानी जिन्दा कैद कर लिये गये। कौंसिल के केवल एक सदस्य बख्शी भगतराम ने दिलीपसिंह के न्याय पत्र पर हस्ताक्षर न किये और अपने आप को रङ्क बना लिया। पण्डित दीनानाथ ने लार्ड डलहौजी से फ्रांस की उत्क्रान्ति की ओर इशारा कर के कहा कि अंगरेज तो ऐसी जाति है कि जिस ने बादशाहों को उन के राजपाट वापिस दिलाने के लिये इतना बड़ा युद्ध किया है। इस बच्चे का क्या दोष है? यह निरपराध तो अंग्रेजों के निरीक्षण में था। लार्ड डलहौजी ने उत्तर दिया "चुप रहो नहीं तो काले पानी जाओगे।" यह रोता हुआ बाहर आया और पंजाब के सिक्ख राज्य का यह नाटक समाप्त हुआ।

लार्ड लॉरेंस ने कोहेनूर हीरा लेकर इंगलैण्ड भेज दिया यानी भारत का राज्य हिन्दुस्थान से इंगलैण्ड में चला गया। एक समय पर एक पुरुष ने रणजीतसिंह से पूछा कि कोहेनूर का क्या मूल्य होगा तो महाराज ने उत्तर दिया था 'दो जूते" दूसरे शब्दों में जिस के पास पाशविक बल हो वह उस का स्वामी बन जावे।

सिक्खों में से एक संघ और निकला जिस ने अपना नाम "नामधारी" रख कर फिर खालसा राज्य स्थापित करने का संकल्प किया। उन का नेता गुरु रामसिंह था, जिस ने नामधारी पन्थ के सिद्धान्त अंग्रेजी राज्य से पूर्ण असहयोग पर रख के अंग्रेजी कचहरी में न जाना, डाक में चिट्ठियां न रवाना करना, रेल पर सवार न होना, सरकारी नौकरी न करना और आपस में बांट कर खाना यह साधारण नियम थे। इस पन्थ में स्त्रियों के अधिकार पुरुषों के समान थे। यह पन्थ सा- रणतया "कूका" नाम से प्रसिद्ध है। इन के कुछ आद अमृतसर में बूचड़ों को मार दिया इस पर अमृतसर रईस पकड़े गये। उन के बचाने के लिये कूकों ने अ स्वीकार कर लिया। उन्हें फांसी दी गई। इस अशान्ति फैल गई और उन के कुछ आदमियों ने दिया जो वहां पर तोप से । पन्थ को राज्यविरोधी

१८५७ की हलचल।



लाई डलहौज़ी के समय में समस्त देश में अंगरेज़ी राज्य स्थापित हो गया। उक्त लार्ड को सब देश में एक राजनैतिक सत्ता स्थापित करने की बड़ी उत्कण्ठा थी। उस ने इसे पूरा करने के लिए कई एक साधन बनें, जिन से लोगों के दिलों में असन्तोष पैदा होता गया।

...फा नवाब वाजिदअली बड़ा आलसी और दुराचारी था। ...गद्दी से उतार दिया गया। नागपुर और झांसी की ...की सन्तानें न थीं। उन्हें उत्तराधिकारी बनाने की आज्ञा ... नागपुर पर सरकार ने कब्ज़ा कर लिया।

... में अबूज़फर बहादुर शाह राजाधिराज कहलाता था। ...एक पेन्शनख्वार रूप में रहता था तथापि यह तब ... उपाधि या पद हटा

लार्ड लॉरेंस ने कोहेनूर हीरा लेकर इंगलैण्ड भेज दिया यानी भारत का राज्य हिन्दुस्थान से इंगलैण्ड में चला गया। एक समय पर एक पुरुष ने रणजीतसिंह से पूछा कि कोहेनूर का क्या मूल्य होगा तो महाराज ने उत्तर दिया था "दो जूते" दूसरे शब्दों में जिस के पास पाशविक बल हो वह उन का स्वामी बन जावे।

सिक्खों में से एक सघ और निकला जिस ने अपना नाम "नामधारी" रख कर फिर खालसा राज्य स्थापित करने का संकल्प किया। उन का नेता गुरु रामसिंह था, जिस ने नाम धारी पन्थ के सिद्धान्त अंग्रेजी राज्य से पूर्ण असहयोग पर रख के अंग्रेजी कचहरी में न जाना, डाक में चिट्ठियां न रवाना करना, रेल पर सवार न होना, सरकारी नौकरी न करना और आपस में बांट कर खाना यह साधारण नियम थे। इस पन्थ में स्त्रियों के अधिकार पुरुषों के समान थे। यह पन्थ साधारणतया "कूका" नाम से प्रसिद्ध हैं। इन के कुछ आदमियों ने अमृतसर में बूचड़ों को मार दिया इस पर अमृतसर के हिन्दू रईस पकड़े गये। उन के बचाने के लिये कूकों ने अपना कसूर स्वीकार कर लिया। उन्हें फांसी दी गई। इस पर उन में अशान्ति फैल गई और उन के कुछ आदमियों ने मालीरकोटला पर धावा बोल दिया जो वहां पर तोप से उड़ा दिये गये। सरकार ने नामधारी पन्थ को राज्यविरोधी करार दिया।

१८५७ की हलचल।



लार्ड डलहौजी के समय में समस्त देश में अंगरेजी राज्य स्थापित हो गया। उक्त लार्ड को सब देश में एक राजनैतिक सत्ता स्थापित करने की बड़ी उत्कण्ठा थी। उस ने इसे पूरा करने के लिए कई एक साधन बर्ते, जिन से लोगों के दिलों में असन्तोष पैदा होता गया। अवध का नवाब वाजिदअली बड़ा आलसी और दुराचारी था। उसे राजगद्दी से उतार दिया गया। नागपुर और झांसी की रानियों को सन्तानें न थीं। उन्हें उत्तराधिकारी बनाने की आज्ञा न दी गई, नागपुर पर सरकार ने कब्जा कर लिया।

दिल्ली में अबूजफर बहादुर शाह राजाधिराज कहलाता था। यद्यपि वह एक पेनशनख्वार रूप में रहता था तथापि यह तय हो चुका था कि उस के मरने के बाद यह उपाधि या पद हटा दिया जाय। क्योंकि इस के पुत्र से भी यह पद छीना जाना था इस कारण बादशाह की बेगमें दिल में जलने लगीं और, राज्यगृह में सरकार के विरुद्ध बात चीत होने लगी। पेशवा बाजीराव जो कानपुर के पास एक जगह मठोर में पेनशनख्वार

रहता था, मर गया। उस ने नाना साहब धुन्दुपंत को अपना मुतवन्ना बना या था। सरकार ने उस की पेनशन बन्द कर दी। इस तरह भारत के रईसों में, जिस में रानियां बेगमात भी शामिल थीं, सरकार के विरुद्ध विचार फैल रहा था। जब अंगरेजी फौज में क्या हिन्दु और क्या मुसलमान सब सिपाहियों में मजहब में दखल के खयाल से जोश फैलना शुरू हुआ। इस कारण उन समय पहले ही से फौजों में नए कारतूस जारी किये गए, जिन को मुंह से छूना पड़ता था। सिपाहियों में यह बात मशहूर हो गई कि कारतूस में गाय और सूअर की चर्बी लगी है और इस में हिन्दु और मुसलमानों के धर्म भ्रष्ट करने का खयाल है। निराश राजाओं और नवाबों ने इस हलचल से लाभ उठाना चाहा और उन्हों ने सब जगह पर फौजों में अंगरेजों के विरुद्ध खयाल फैला दिये। प्लासी की लड़ाई को सौ साल हो चुके थे। इस लिये यह बात मशहूर होगई कि एक शताब्दी के बाद यह राज खतम हो जायगा।

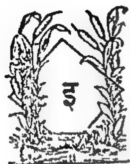
बारकपुर में दो पलटनों ने कारतूस छूने से इनकार कर दिया और कुछ अंगरेज अफसर मार डाले। वे दोनों पलटनें बरखास्त कर दी गई। इस से सब जगह हलचल फैल गई। मेरठ में आग लगनी शुरू हुई। एक पलटन ने कारतूस के छूने से इनकार कर दिया अंगरेज अफसरों ने कुछ सिपाहियों को कैद कर दिया। बाकी सिपाही नगर में गये। स्त्रियों ने उन्हें

कहा "क्या तुम्हें शरम नहीं आती ? तुम सिपाही बने फिरते हो और तुम्हारे साथी जञ्जीरों में पड़े हैं।" वे जोश में आए। गिरजा में आग लगा दी गई, कितने ही अंगरेज मारे गए और रात के अन्दर ही अन्दर दिल्ली पहुंच कर शाही झण्डा बुलन्द कर दिया गया। जहां कहीं फौज थी उस का यही हाल हो गया। अफसरों को मार कर सिपाही दिल्ली पहुंचने लगे।

कानपुर का कतल बड़ा शोकजनक है, क्योंकि उस में लोगों ने स्त्रियों और बच्चों को भी क़तल कर दिया। कानपुर में एक वेश्या का मकान सिपाहियों के मशविरा करने का केन्द्र था। दिल्ली कानपुर और लखनऊ उत्क्रान्ति के मुख्य स्थान थे। पंजाब की फौज को इस की कुछ खबर न थी और न उसे शामिल होने का अवसर मिला। पंजाब की फौज ने अँगरेज़ी सरकार की सहायता कर के दिल्ली को पुनः उन के अधिकार में कर दिया। कानपुर में नानासाहब तांतिया तोपी और लखनऊ में अहमदशाह दो वर्ष तक लड़ते रहे। यह आग गांव गांव और शहर में लग गई।

लक्ष्मी बाई।





स हलचल में झांसी की रानी लक्ष्मी बाई का भाग पुरुषों से बढ़कर है। झांसी का राजा गंगाधरराव मर गया। उस का कोई बेटा न था। उस की रानी लक्ष्मी बाई ने एक मुतबन्ना बनाया। लार्ड डलहौज़ी हिन्दुस्थान को एकमय करने पर तुला हुआ था। यह उस की नीति थी कि सन्तान न होने की अवस्था में राज्य को सरकार के साथ शामिल कर लिया जाय। उस ने नागपुर की रानियों को मुतबन्ना बनाने की इजाज़त न दी थी। उन का प्रदेश स्वयं ले लिया। रानियों के सब आभूषण छीन लिये और उन्हें खुले बाजारों में नीलाम किया गया। जब नागपुर के साथ जो सकट में अंगरेज़ी सरकार के साथ रहा था ऐसा सलूक हुआ तो झांसी की कौन परवाह करता था। झांसी का सारा इलाका सरकार ने ले लिया।

यह एक बड़ा कारण था जिस से हिन्दू राजा अंगरेज़ी सरकार के खिलाफ तैयार हो गये। ऐतिहासिकों ने लिखा है कि लक्ष्मी बाई सिपाही के कपड़े पहन घोड़े पर चढ़ रण-क्षेत्र में जब युद्ध करनेके लिये जाती थी तब बिजलीकी तरह शत्रु पर

वार करती थी। एक ने तो यह कहा है कि सारे गदर में लक्ष्मी बाई ही एक शूरवीर हस्ती थी। लड़ाई में जब उस के लिये और कोई चारा न रहा तब उधर से निकल गया लेकर मैं लड़ाई जारी रक्खी। तलवार के कितने ही घाव उस के शरीर पर आए, पर वह घोड़ा दौड़ाती चली गई अन्त में एक साधु की कुटी के पास जाकर उस का दम निकला।

लक्ष्मी बाई के साथ एक पण्डित रहा करता था। वह हाल के जमाने तक जिन्दा रहा है। कहा जाता है कि श्री अरविन्द घोष ने इसी से दीक्षा ली थी।

दो वर्ष के बाद शने २ यह आग शान्त की गई। दिल्ली आदि नगरों में कितने ही आदमी तलवार के घाट उतारे गये और तोपों के मुंह पर बांध कर उड़ाए गये। महारानी विक्टोरिया की ओर से एक घोषणा पत्र निकाला गया कि राज अब कम्पनी से इंगलैण्ड की पार्लिमेण्ट के हाथ में चला गया है और वह सारी प्रजा से समान व्यवहार करेगी किसी के मजहब में हस्तक्षेप न करेगी और सरकार कोई रियासत अपने राज्य में न मिलायगी। यह एक अधिकारों का चार्टर था जो सिपाही दल की उत्क्रान्ति के बाद लोगों को मिला। इस में सारी प्रजा के अधिकारों का रंग, मजहब अथवा विचारों की परवाह न करके समान माना गया। उस के अनन्तर भारतवर्ष में नई राजनैतिक तरङ्ग चली।

नवीन भारत।





पने सम्भवतः यह नवीन भारत का शब्द बहुत बार सुना होगा पर इस पर विचार नहीं किया होगा यह कौनसी नई शक्तियां हैं जो इस भारतीय आधुनिक युग को पिछले भारत से अलहैदा करती हैं। वर्तमान काल की मुख्य और निराली बात यह है कि सारे देश में जातीयता की लहर दिन प्रति दिन बढ़ रही है। इस में कोई सन्देह नहीं कि यह जागृति एक सुदृढ राज्य के अन्दर हमारे जकड़ जाने से पैदा हुई है और साथ ही यह आधुनिक युग की संस्थाओं और समाचारपत्रों आदि का परिणाम है। देश के किसी कोने में अन्याय होता है तो समस्त देश में इस का ढंढोरा पिट जाता है। किसी प्रान्त में बीमारी, दुर्भिक्ष या दारिद्र्य से जनता पीड़ित होती है तो सारे देश में यह गूंज प्रतिध्वनित होजाती है और पढने सुनने वालों के हृदय पिघल कर पीड़ितों के प्रति स्नेह और सहानुभूति का प्रकाश करने में लग जाते हैं। एक वेदना से जाति की नब्ज का फड़कना

जातीय जागृति का प्रमाण है। यदि यह परिणाम दासता से भी पैदा हुआ है तो भी इसे गुलामी का बड़ा भारी लाभ समझना चाहिये

इस से पहले मत मतान्तरों तथा प्रान्तों के कारण बहुत भेद पाये जाते थे इस का यह मतलब नहीं कि यह भेद सर्वथा लुप्त हो गया है, अभी तक मजहबी पक्षपात काफी है। मुसलमानों को अपनी मजहबी बात ही जोश दिलाती हैं सिक्खों को भी मजहबी बातें आकर्षित करती है। परन्तु इस के साथ २ नई बात जो हुई है वह यह है कि राष्ट्रीयता का भाव भी पैदा हो गया है और यह दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है, यद्यपि प्रान्तिक भाव भी हमारे अन्दर काम करता चला जारहा है। महाराष्ट्र निवासी मराठों को अधिक प्रेम और सन्मान की दृष्टि से देखते हैं। बंगाल इस अंश में सब से बढ़ा हुआ है। उन्हें तो बंगाल ही एक देश दिखाई देता है। मद्रास में यह भाव सर्वथा नहीं पाया जाता। ज्यों २ जातीयता से प्रेम बढ़ेगा। त्यों २ भाव को संकुचित करनेवाले विचार कम होते जायगे।

मुसल्मानों के अन्दर मजहब एकता और संगठन बड़े ज़ोर पाई जाती थी। मुसल्मान हो जाने पर एक आदमी को समान अधिकार मिल जाते थे परन्तु जब तक कोई इस्लाम धर्म में न था तब तक उस के कोई अधिकार अर्थात् एक व्यक्ति की राजनैतिक योग्यता भी चन्द

धार्मिक सिद्धान्त मानने या न मानने पर निर्भर थी। राजपूत लोग हिन्दु-जाति के रक्षक थे। इसी हैसियत से वे मुसलमानों का सामना करते रहे। जब मराठों के अन्दर जीवन-ज्योति चमकी और वह एक राजनैतिक सत्ता बन गये तब उन में भी यही एक भाव काम करता था कि किसी तरह मराठा राज्य भारतभर में स्थापित हो जाय। बजाय इस के कि राजपूतों के साथ मिलकर देश में हिन्दू राज्य बना लेते उन्होंने उन से भी चौथ वसूल करके उन को अपने अधिकार में रखना चाहा।

पञ्जाब में जब सिक्खों का राज्य हुआ तब तो उन्होंने भी इसी बात का प्रयत्न किया कि राजपूतों तथा मराठों के समान वे भी पञ्जाब या दिल्ली के राजा बन जायें। वीर वैरागी के उदाहरण से यह बात सिद्ध होती है कि किस प्रकार ५०० सिक्ख एक रुपया या आठ आना तनख्वाह पर नवाब से जा मिले और गुरदासपुरा की लड़ाई में नवाब के पक्ष में वैरागी से लड़े। यही वैरागी की हार का सब से बड़ा कारण था।

मुसलमान हमला करने वालों ने और उन के विरुद्ध राजपूतों, मराठों और सिक्खों ने बड़ी बहादुरियां और कुरबानियां कीं। परन्तु उन में मजहबी जोश ही काम करता था। वर्तमान जातीयता की तरङ्ग के अन्दर एक विशेष बात यह है कि प्रजा की रक्षा के लिये प्रजा के प्रतिनिधियों की ओर से ही प्रजा का शासन हो और किसी विशेष व्यक्ति या सम्प्रदाय का दूसरों

पर अधिकार न हो। कई लोगों का विश्वास है कि १८५७ का गदर जाति की चेतनता का परिणाम था। हमारी सम्मति यह है। सिपाही विद्रोह राजाओं और फौजों के परस्पर समझौते से हुआ था। जिन राजाओं के हाथ से राजसत्ता खोई गई थी वे मन ही मन बड़े जलते थे और मौका को ढूंढ़ रहे थे। जब अँगरेज़ अफसरों ने फौजियों के मजहब में हस्तक्षेप करना चाहा। तब उन को भी यह ख़याल हुआ कि फौज लामज़हब हो कर सदा के लिए उन की तरफ हो जावे। यद्यपि फौजी लोग "देश क्या है" इस को कुछ न जानते थे तथापि मजहबी भाव उन के अन्दर बड़ा प्रबल था। परिणाम यह हुआ कि इस अशान्ति से लाभ उठा कर राजाओं न फौज को अपनी तरफ कर लिया। वे उन लोगों को नष्ट भ्रष्ट और समूलोच्छेद करने पर उद्यत हो गये, जिन्होंने उन को दुःख दिया था। परन्तु उन के सामने स्वतन्त्र राज्य-स्थापना की कोई युक्ति अथवा योजना न थी। महारानी विक्टोरिया ने अपनी घोषणा में इन दोनों बुराइयों को सदा के लिये दूर कर दिया कि आगे को किसी के मजहब में हस्तक्षेप न किया जावेगा और न किसी देसी रियासत को मिटा कर अपने साथ शामिल किया जायगा। आधुनिक मजहबी स्वतन्त्रता और रियासतों की स्थिति इस गदर के बड़े भारी फल हैं। यदि उन के दिलों में और अग्नि होती तो उस

का कुछ न कुछ अंश रहजाता और हमें उस का परिणाम अवश्य देखने में आता।

दूसरी बड़ी शक्ति आधुनिक काल की देशभक्ति की तरह है। जब कोई जाति एक होकर समष्टिरूप में विचार करने के योग्य होजाती है तब देशभक्ति का उत्पन्न होना इस का अवश्यम्भावी फल है। पहली अवस्था हुए बिना दूसरी का कभी आविर्भाव नहीं हो सकता। संसार में क्रिया और प्रतिक्रिया का नियम काम करता है।

जब मुसलमान आक्रमणकारी भारतवर्ष में आये, तब उन का अभिप्राय मज़हब का फैलाना और दूसरों को लूट मार कर उन पर अपना शासन स्थापित करना था। ठीक इसी प्रकार की प्रतिक्रिया हिन्दुओं की ओर से हुई। मराठों ने वही तरीका बर्त कर हिन्दू राज्यों की स्थापना की। हिन्दू जाटों और सिक्खों ने भी ऐसा ही किया।

हिन्दुस्थान में अंगरेज़ी राज्य देशभक्ति के जज़बे से कायम किया गया। हरएक अंगरेज़ बच्चा अपने देश के हित के लिये क्षेत्र में आता है और इस के लिये प्राण तक न्योछावर करने पर उद्यत होता है। अंगरेज़ी राज्य की स्थिति का यही एक रहस्य है। भारतवर्ष पर इस जज़बे का आघात लगा और दूसरी ओर से देशभक्ति का प्रत्याघात पैदा हुआ। यह देशभक्ति भिन्न २ लहरों के रूप में प्रकट हुई। जहां पर, अंगरेज अपने

राजनैतिक लाभ अपने सामने रखते हैं वहां उस के साथ वे अपने मजहब और साहित्य से प्यार करते हैं। ईसाइयों ने यहां आकर अपनी सभ्यता और मजहब का प्रचार आरम्भ किया।

इस के विरुद्ध पहले तो ब्रह्मण समाज खड़ी हुई ताकि ईसाई मजहब जाति को बिलकुल ही न खा जाँय। उन का सिद्धान्त यह था कि सब मजहब सचाई का बीज बोते हैं, और हिन्दु धर्म में भी यह सचाई विद्यमान है। उस के साथ आर्य्य समाज एक पग और आगे बढ़ा। उस ने बताया कि सारी सचाई वैदिक धर्म से निकली है और हिन्दु सभ्यता सर्वोत्तम है। इसी समय थियासोफिकल सोसाइटी काम करने लगी जिस का ज़ोर मद्रास में हुआ। मैडम ब्लैवटस्की करनल अल्काट, और स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू सभ्यता का प्रचार अमेरिका में किया। गोरक्षिणी सभा भी तरफ़ जो संयुक्त प्रान्त में कायम की गई कुछ समय तक केवल हिन्दुओं में जागृति लाने का प्रयत्न करती रही। महाराष्ट्र में स्वदेशी और राजनैतिक लहर शुरू से ही ज़ोर पर रही। मिस्टर ह्यूम ने कुछ भारतवासियों को इकट्ठा करके कांग्रेस की नींव डाली जिस का बड़ा काम भिन्न २ प्रान्तों में अपने वार्षिक अधिवेशन करके राजनैतिक आन्दोलन करना था।

१९०४ में जापान और रूस का युद्ध हुआ। जापान के विजयी होने पर भारत में जापान का नाम और देशभक्ति के

उदाहरण गाव २ और नगर नगर में फैल गए। उस समय लार्ड कर्जन ने बङ्ग भङ्ग कर के लोकमत की कुछ परवाह न की। तिस पर स्वदेशी और बहिष्कार का प्रचार हुआ। यही स्वदेशी की तरंग पंजाब में फैली और लायलपुर और लाहौर के जाटों में नहर के महसूल बढ़ाए जाने पर जोश फैल गया। इस पर ला• लाजपतराय और सरदार अजितसिंह को गिरफ़ार कर के माण्डले भेजा गया।

कॉंग्रेस की स्थापना पर मुसलमानों के नेता सर सैय्यद अहमद ने मुसलमानों को उपदेश दिया कि वे कॉंग्रेस से पृथक रहें। कुछ देर बाद अपने अधिकारों की रक्षा के लिए मुसलमानों को मुसलिम लीग बनाने की आवश्यकता हुई। इटली और बलकान का टर्की से युद्ध हुआ। इस में मुसलमानों के अन्दर योरुपीय जातियों के विरुद्ध जोश बढ़ा। कई नवयुवक टर्की में गये। उन को वहां से यही शिक्षा दीगयी कि जब तक तुम्हारी अपने देश में कोई प्रतिष्ठा नहीं होती तब तक तुम तुर्कों की कोई उचित सेवा या सहायता नहीं कर सकते। योरुप के गत महायुद्ध में टर्की जर्मनी के साथ होगया। स्वभावतः संसार के सब मुसलमानों की सहानुभूति टर्की और जर्मनी के साथ थी। ... के साथ होना सम्भव होता था, क्योंकि रूस ... का शत्रु चला आता है। मित्रराष्ट्रों की ... यदि टर्की के साथ नरम बरताव होता तो सम्भ...

कि हिन्दू मुसलमान भारत की राजनीति में बहुत भाग न लेते। परन्तु मित्रराष्ट्रों ने तुर्कों के साथ कोई नरमी का सलूक न किया। इस कारण पक्के दीनदार मुसलमानों के दिल अंग्रेजी राज्य से निराश होगये। वे इस परिणाम पर पहुंचे कि संसार की नीति में भारतवर्ष के मुसलमानों का बड़ा प्रभाव होसकता है यदि उन का अपने देश की नीति में कुछ हाथ हो। यद्यपि अभी तक यह नहीं कहा जा सकता कि भारतवर्ष के मुसलमानों में सच्ची देशभक्ति पैदा होगई है तथापि इतना ज़रूर है कि उन के अन्दर देशभक्तों का एक दल बन रहा है और हिन्दू मुसलमानों की सच्ची एकता भी तभी होगी जब मुसलमानों की नीति में देश भक्ति का भाव काम करने लगेगा।

सिक्खों की संख्या बहुत थोड़ी है लेकिन एक जङ्गी फ़िरक़ा होने के कारण उन की स्थिति पंजाब में एक खास दर्जा रखती है। सिक्ख राज्य की समाप्ति पर सिक्ख साधारण हिन्दुओं में ही मिल गये। इन का अस्तित्व पृथक् न रहा। सिक्खों के लिये विशेष अधिकार लेने या दूसरे शब्दों में सरकारी नौकरियों के लालच ने सिक्खों को हिन्दुओं से पृथक् होने पर मजबूर किया और सिक्ख एक पृथक् जाति बनने लगी।

भारत वर्ष के कुली चिर काल से अन्य देशों तथा उपनिवेशों में ले जाए जाते हैं। आफ्रिका, फिजी, दक्षिण अमेरिका आदि ब्रिटिश उपनिवेशों में इन की दशा आधी गुलामी की है।

कनाडा में और अमेरिका में सिक्ख लोग गए हैं। यह फौज और पुलिस में भरती होकर चीन की बन्दरगाह हांगकांग और शंघाई में थे। घर से कोई दिल-चला अमेरिका चला गया। उस ने ख़बर दी और हज़ारों की सख्या में यह लोग नौकरी छोड़ छोड़ कर वहां जा पहुंचे। कनाडा के गोरे लोगों को इन का दु ख हुआ। उन्हों ने रोकना चाहा और एक क़ानून बनाया कि कनाडा के यात्री को बिना जहाज बदले सीधा अपने देश से आना चाहिये। सरदार गुरुदित्त सिंह जापानी जहाज लेकर कलकत्ता से कनाडा पहुंचा वहां उन के साथ जो बर्ताव हुआ इस से कनाडा और अमेरिका के सिक्ख लोग जल गये। उधर स्वतन्त्रता के वायु मण्डल में रहकर मनुष्य के अधिकारों का विचार उन के दिलों में घुस गया था उन्हों ने इस अपमान को अनुभव किया जो अपने देश में रहकर वे कभी अनुभव न कर सकते थे।

महायुद्ध आरम्भ होने पर सिक्ख सैंकड़ों हजारों की संख्या में अपने देश में आए ताकि अपने देशवासियों और सिक्ख जाति को सचेत करें। इन को जो कष्ट हुये अथवा जो कुर्बानी उन्हों ने की वे बहुत ताज़ा हालात हैं।

इन सब का नेता एक नवयुवक लड़का करतारसिंह था जिस की आयु १९ वर्ष की थी। इसे फॉसी चढ़ाया गया।

होगाया का कोई शहर ग्राम नहीं जिस में स किसी न किसी मित्र ने इस में भाग न लिया हो।

योरप का महायुद्ध समाप्त हुआ। मित्र राष्ट्रों ने जरमनी पर विजय प्राप्त कर ली। भारतीय सेना ने इंग्लैंड की बड़ी सहायता की थी। इंग्लैंड ने हिन्दुस्थान के शासन में परिवर्तन करने के लिये शासन सुधार का एक कानून पास किया। परन्तु इस के साथ ही गरम विचारों को जड़से उखेड़ने के लिये रौलट-एक्ट द्वारा सरकारी अफसरों और पुलिस को असाधारण अधिकार दे दिये। इस रौलेट के कानून के विरुद्ध महात्मा गांधी ने आवाज़ उठाई। पंजाब के लोग की गई सख्तियों से बहुत तङ्ग आए हुए थे। सभी हिंदु मुसलमान और सिक्ख उस के विरुद्ध खड़े हो गये। यह एक विचित्र और अपूर्व ऐक्य था जो देश में पैदा हुआ। इस राष्ट्रीय एकता का उत्तर मारशल्ला मिला। यह तरङ्ग उस भयङ्कर मारशल ला के दुःख से भी बच निकली। यह देश भक्ति की आग एक नई भट्टी थी जिस में पुराने पक्षपात और ईर्षा द्वेष के दग्ध हो जाने की आशा की जा सकती है।

तीसरी शक्ति मनुष्य के जन्मसिद्ध अधिकारों का ज्ञान है। इस का अर्थ यह है कि प्रत्येक मनुष्य अपने देश और समाज के भीतर जहा उस के लिये कुछ नियत कर्त्तव्य हैं वहां इस के नियत अधिकार भी हैं। जहां हरएक मनुष्य के लिये यह

उचित है कि वह अपने समाज की रीति नीति या नियमों को भङ्ग न करे क्योंकि वह समाज में रहता हुआ उन से विशेष लाभ प्राप्त करता है वहां उस को यह अधिकार है कि वह सोसाइटी के भले और बुरे के सम्बन्ध में अपनी सम्मति रक्खे और यथा सम्भव उसका प्रयोग करे। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि के जन्म मूलक होजाने का हिन्दु जाति पर यह प्रभाव पड़ा कि देशरक्षा का काम थोड़े से लोगों के लिये ही रह गया। शेष सब लोगों ने हथियार छोड़ दिये और वैश्यों के काम में लग गए। योरुप के महायुद्ध से पूर्व इंग्लैंड की प्रवृत्ति भी इसी ओर थी। अंगरेज विद्वानों में युद्ध के विरुद्ध विचार फैल रहे थे। स्पैन्सर ने यहां तक लिखा कि जातियों के परस्पर व्यापार की जितनी बढ़ती हो रही है उतना ही जाति युद्ध का होना असम्भव सा हो रहा है। जर्मनी युद्ध की तैयारी में लगा रहा। युद्ध के प्रारम्भ में अँगरेज जाति ने अपनी निर्बलता को अनुभव किया और यदि पुराने काल की लड़ाई तलवार और भालों की होती तो अंगरेज जाति का कोई ठिकाना न था। परन्तु उन के पक्ष मे बात यह थी कि विज्ञान की उन्नति ने युद्ध को और ही रंग दे दिया। मैशीनगन को हाथ में लेकर एक बच्चा भी वैसा ही लड़ सकता है जैसा कि एक युद्ध-कुशल मनुष्य।

भारत में चूंकि किसी विदेशी शत्रु से मुकाबला न हुआ था, राजपूतों की सख्या बहुत सकुचित और परिमित हो गई। साधारण लोगों को विचार भी न रहा कि आवश्यकतानुसार वह भी क्षत्रिय का काम कर सकते हैं। उन्होंने न केवल तलवार को पकड़ना ही पाप समझा प्रत्युत उनका देश रक्षा तथा राज्य प्रबन्ध में कोई हाथ ही न था। अन्य प्रबन्ध करना ऐसा हो गया जैसे मदारी के हाथ में जादू का खेल। कोई लुटेरा कहीं से चला। कुछ साथी लूटमार के लालच में इकट्ठे किये। जिस प्रदेश या प्रान्त पर चाहा अधिकार कर लिया। लोगों की अवस्था बैलों की सी हो गई थी जो एक से दूसरे मालिक के अधिकार में चले जाते हैं। हैदरअली का दादा फकीर था, बाप सिपाही और वह आप बादशाह बन गया। खुसरो एक कमीना शूद्र गुलाम था पर वह दिल्ली का बादशाह बन गया। कोई राजपूत अथवा सिक्ख सरदार एक जगह से चल पड़ा और दूसरे स्थान पर उस ने अपना राज्य बना लिया।

बङ्गाल के अराजक दल ने ठीक यही आदर्श अपने सामने रक्खा और डाके मारकर अपनी शक्ति बढ़ाने का यत्न किया परन्तु वे यह न समझ सके कि जब एक गांव में लूट मार की जाती है तो वहां के लोगों को देश भक्ति की शिक्षा कैसे मिल सकती है। लोगों को बताना यह है कि वह समझें कि उन की गवर्नमेन्ट में उन का हाथ होना चाहिये। दूसरे शब्दों में सरकार

को अच्छा या बुरा कहने और उस के कामों पर आलोचना करने का अधिकार प्रजा को है। इसी पर लोक मत आश्रित है। उस का परिणाम यह होता है कि आज एक आदमी अच्छा है, लोगों का नेता है। कल वह गिर जाता है तो लोग उसे छोड़ देते हैं। इस से ऐसी घटनाए देखने में आयगी कि कोई एक नेता स्वय गिर कर सब को गढ़े में गिरा देगा। प्रजा को अपने इस अधिकार का ज्ञान गत महा-युद्ध के कारण हुआ जब कि गवर्नमेण्ट को अपने उच्च पद से उतर कर सिपाहियों की भरती करने और धन की याचना करने के लिये लोगों के पास जाना पड़ा। सच तो यह है कि भारत में यह एक प्रकार की राजनैतिक तत्त्व बोध (Renaissance) का आरम्भ है।

—— o ——

स्नेह-लता ।





न १८१८ में कलकत्ता में एक बाबू हरीन्द्र कुमार मुखोपाध्याय रहा करते थे। वे दलाली के काम से अपना गुजारा किया करते थे। बाल बच्चे कई एक थे। आमदनी इतनी ज्यादा न थी कि परिवार का गुजारा करके कुछ बचा भी सकते। खाने पीने और कपड़े के खर्च के अलावा बच्चों की शिक्षा का ख्याल भी उन को था। जो कुछ इस पेशे में आमदनी होती खर्च में जाती। उन की एक लड़की का नाम स्नेहलता था जिसे उन्हों ने अच्छी तरह से शिक्षा दी जिस से उस के अन्दर बड़े उच्च धार्मिक भाव भर गए।

लड़की बड़ी समझदार थी। उस की उमर पन्द्रह साल की होगई। माता पिता को उस के वास्ते किसी योग्य वर की तलाश हुई। लेकिन बङ्गाल में किसी लड़की के लिये योग्य वर का मिल जाना कोई खाला जी का घर नहीं है। वहाँ के लोग बड़े शिक्षित हैं, बड़े सभ्य और बुद्धिमान हैं। उन के लड़के ऐसे गए गुजरे नहीं कि उन के वजन के बराबर चाँदी लेकर किसी लड़की को उन के ब्याह के वास्ते मंजूर करलें।

वे लोग अपने लड़कों को शिक्षा देते हैं, बी० ए०, एम०-ए० पास कराते हैं। कोई लड़की वाला उन के पास अपनी प्रार्थना भेजता है कि उस की लड़की को अपने लड़के के लिये स्वीकार करें। आगे से जवाब मिलता है कि 'बाबू साहिब हमने दस हजार रूपया लड़के की शिक्षा पर खर्च किया है। इस में तो मीन-मेख हो नहीं सकती। अब हमारा इरादा इसे इंग्लैण्ड में सिविल-सर्विस के वास्ते भेजने का है। इस पर पन्द्रह हजार से कम खर्च क्या आयगा। इस लिये हमारा लड़का पचास हजार के बिना लड़की के साथ शादी नहीं कर सकता।"

यह अवस्था उस बङ्गाली जाति और प्रांत की है जो समस्त भारत वर्ष में ऊँचे दर्जे की शिक्षित और सभ्य है, जिस के सपूत जड़ी बूटी और वनस्पति में भी जीवात्मा पाकर उन के दु:ख सुख आदि की बातें संसार को बताना चाहते हैं। किन्तु अपने स्व-जाति, गरीब, लड़की वाले भाईयों की उन कन्याओं की दु:खदाई हालात को देखने के वास्ते उन के पास कोई अनुवीक्षण यन्त्र नहीं है।

गरीब हरीन्द्र बाबू को कब आशा हो सकती थी। महीनों टक्करें मारीं। दिन को अपना काम छोड़ कर गली २ महल्ले २ में चक्कर लगाए। स्कूलों और कालेजों को ढूंढ मारा। परन्तु उस

की इच्छानुसार कोई वर न मिला जो सस्ते दामों में खरीदा जा सके। आखिर बहुत खोज के बाद एक मनुष्य ने उस को कह दिया कि 'अच्छा तुम गरीब आदमी हो, हम सिर्फ दो हजार रुपया लेकर अपने लड़के का विवाह आप की कन्या से करेंगे।

कहां पांच कहां पन्द्रह और दस! पांच हजार से कम तो कोई नाम भी न लेता था। हरीन्द्र बाबू ने दो हजार को गनीमत समझा किन्तु उस के पास तो दो सौ भी न था। अब उस ने दो हजार की तलाश में कलकत्ता की गलियों की मिट्टी छाननी शुरू की। जो कुछ हाल हर रोज गुजरता वक्त बेवक्त घर में अपनी स्त्री को सुनाता जाता था।

स्नेहलता जानती थी कि पिता जी किस मुसीबत में आज कल दिन गुजार रहे हैं। बाबू का जब अपनी पत्नी के पास आने का समय होता तब स्नेहलता दीवार या द्वार की ओट में खड़ी होकर दोनों की बातचीत सुना करती थी और मन ही मनमें जला करती थी कि "हाय! मैं दुर्भागिनी इन के घर में कैसी पैदा हुई, दुःख का कारण बनी, जिस में सारा परिवार फंस रहा है। हरीन्द्र बाबू ने अपनी स्त्री से सलाह ली कि रुपया सिवाय इस के कि जिस मकान में हम रहते हैं बेच दिया जाय कहीं भी नहीं मिल सकता।

बाबू साहब अब इस नए उद्देश को लेकर नगर में घूमने लगे। दलाल तो थे ही, जहा दूसरों की चीज़ों की ख़रीद फरोख्त का काम किया करते थे वहा अपना मकान भी बेंच डालेंगे। एक दिन इसी सम्बन्ध में उस ने अपनी अर्द्धाङ्गिनी से आकर कुछ जिक्र किया और उस में यह शब्द भी कहे कि 'काम बिगड़ गया है!" यह बात भी स्नेहलता ने सुनली और मन में ठान लिया कि मैं दुर्भागिनी इन के घर में न होती तो मेरे माता पिता को जिन्हों ने पन्द्रह बरस तक मेरा पालन पोषण किया है यह मुसीबत पेश न आती। इन की सेवा का बदला मैं और तो कुछ दे नहीं सकती हा, यह तो मेरे इख़तियार में है कि मैं इन को इस सङ्कट से निकाल दू और निश्चय पक्का कर के उस ने अपने पिता को यह पत्र लिखा —

पूज्य पिता जी!

मेरे ब्याह के लिये आप अपने बाप दादा के मकान को न बेचें मुझे तो यह सहन नहीं हो सकता। मैं यह नहीं चाहती कि इस पर दूसरों का अधिकार होजाय।

अब आप को घर के बेचने की जरूरत नहीं क्योंकि कल सूर्योदय से पूर्व ही यह अभागिनी परलोक सिधार जायगी। मेरी माता ने और आप ने मुझे लाड़ प्यार से पाला, अपनी आखों पर बिठाया और मैं राजकुमारी के समान इस घर में आनन्द से रही। क्या इस प्रेम का अभी यही बदला है कि

मेरे कारण मेरे माता पिता कष्ट उठावें, माई बहिन मुसीबतें झेलें और आप अपने शेष जीवन को निर्धनता की भेंट करदें?

पिता जी, आपका नगर से दोपहर को वापस आना और कांपते हुए कहना कि 'काम बिगड़ गया है' मेरे सामने है। यह आवाज मेरे कान में गूँज रही है। मेरे ब्याह की फिक्र ने आप को जला दिया है। कुछ बरस तक मेरा अविवाहित रहना आप की शिकायतों का कारण हुआ। आप ने मेरे ब्याह के लिये पूरी २ कोशिश की। मैं सिर्फ आप के फिक्र को दूर करने के ख्याल से विवाह करना चाहती थी वरना ऐसी हालत में शादी की चाह कैसे उत्पन्न हो सकती है! बस! अब मेरा विवाह असम्भव है।

बरदवान में पानी की बाढ़ आने पर हमारे देश के नवयुवकों ने लाचारिसों की सहायता के लिये बड़ी बड़ी कोशिशें कीं और आफ्रिका के रहनेवालों के लिये भीख मांगी। परमेश्वर ऐसे नौजवानों को चिरायु करे। किन्तु दुःख इस बात का है कि ऐसे नौजवान अपने देश की बेहतरी की ओर तो ध्यान नहीं देते। रात को मेरे जन्मदाता ने मुझे बुलाया है। मैंने उस के पास जाने का निश्चय कर लिया है। इसलिये अब आप लोगों को मेरे ब्याह का कष्ट न झेलना पड़ेगा। सांसारिक जीवन को खतम करने के लिये मैंने अग्नि देवता की शरण लेना उचित समझा है। आप विवाह के फिक्र से बिलकुल

बाबू साहब अब इस नए उद्देश को लेकर नगर में घूमने लगे। दलाल तो थे ही, जहा दूसरों की चीज़ों की खरीद फरोख्त का काम किया करते थे वहा अपना मकान भी बेच डालेंगे। एक दिन इसी सम्बन्ध में उस ने अपनी अर्द्धाङ्गिनी से आकर कुछ ज़िक्र किया और उस में यह शब्द भी कहे कि 'काम बिगड़ गया है!" यह बात भी स्नेहलता ने सुनली और मन में ठान लिया कि मैं दुर्भागिनी इन के घर में न होती तो मेरे माता पिता को जिन्हों ने पन्द्रह बरस तक मेरा पालन पोषण किया है यह मुसीबत पेश न आती। इन की सेवा का बदला मैं और तो कुछ दे नहीं सकती हा, यह तो मेरे इख़तियार में है कि मैं इन को इस सङ्कट से निकाल दू और निश्चय पक्का कर के उस ने अपने पिता को यह पत्र लिखा —

पूज्य पिता जी!

मेरे व्याह के लिये आप अपने बाप दादा के मकान को न बेचें मुझे तो यह सहन नहीं हो सकता। मैं यह नहीं चाहती कि इस पर दूसरों का अधिकार होजाय।

अब आप को घर के बेचने की जरूरत नहीं क्योंकि कल सूर्योदय से पूर्व ही यह अभागिनी परलोक सिधार जायगी। मेरी माता ने और आप ने मुझे लाड़ प्यार से पाला, अपनी आखों पर बिठाया और मैं राजकुमारी के समान इस घर में आनन्द से रही। क्या इस प्रेम का अभी यही बदला है कि

मेरे कारण मेरे माता पिता कष्ट उठावें, भाई बहिन मुसीबतें झेलें और आप अपने शेष जीवन को निर्धनता की भेंट करदें?

पिता जी, आपका नगर से दोपहर को वापस आना और कांपते हुए कहना कि 'काम बिगड़ गया है' मेरे सामने है। यह आवाज मेरे कान में गूँज रही है। मेरे ब्याह की फ़िक्र ने आप को जला दिया है। कुछ बरस तक मेरा अविवाहित रहना आप की शिकायतों का कारण हुआ। आप ने मेरे ब्याह के लिये पूरी २ कोशिश की। मैं सिर्फ आप के फ़िक्र को दूर करने के ख्याल से विवाह करना चाहती थी वरना ऐसी हालत में शादी की चाह कैसे उत्पन्न हो सकती है? बस! अब मेरा विवाह असम्भव है।

बरदवान में पानी की बाढ़ आने पर हमारे देश के नवयुवकों ने लावारिसों की सहायता के लिये बड़ी बड़ी कोशिशें कीं और आफ्रिका के रहनेवालों के लिये भीख मांगी। परमेश्वर ऐसे नौजवानों को चिरायु करे। किन्तु दुःख इस बात का है कि ऐसे नौजवान अपने देश की बेहतरी की ओर तो ध्यान नहीं देते। रात को मेरे जन्मदाता ने मुझे बुलाया है। मैंने, उस के पास जाने का निश्चय कर लिया है। इसलिये अब आप लोगों को मेरे ब्याह का कष्ट न झेलना पड़ेगा। सांसारिक जीवन को खतम करने के लिये मैंने अग्नि देवता की शरण लेना उचित समझा है। आप विवाह के फ़िक्र से बिलकुल

छूट जायें । देश बान्धवों के दिल पिघल जायेंगे और अपने देश का हित चिन्तन करेंगे। ईश्वर करे मेरी इच्छा पूर्ण हो।

मेरी मृत्यु से आप को दुःख होगा, आप रोएंगे किन्तु घर से न निकाले जायेंगे । भाई बहिन कष्ट न उठायेंगे। इसलिये माता दुर्गा की गोद में जाती हूं । अब वहीं सुख एवं आनन्द से निर्वाह करूंगी।

आप की अभागिन पुत्री

स्नेहलता ।

तत्पश्चात प्रार्थनादि करके नए वस्त्र पहन स्नेहलता मकान की छत पर चढ़ गई । कपड़ों को मिट्टी के तेल से तर कर लिया और अपने हाथ से दियासलाई जलाकर कपड़ों को आग ली। इस का अर्थ यह था कि इस देवी ने हिन्दू जाति के नेताओं, पण्डितों, सेठ साहूकारों और राजाओं से स्त्री जाति का वकील बनकर एक प्रार्थना पत्र पेश किया कि हिन्दू स्त्रियों और लड़कियों को उन के कष्ट और क्लेशों की दिन रात जलाने वाली भट्टी से निकालें और हिन्दू समाज के अन्दर पूर्ण अधिकार दिये जायें, यह प्रार्थना-पत्र किसी कागज या स्टाम्प पर नहीं लिखा गया।किन्तु अग्नि की लाल स्याही से स्नेहलता अपने शरीर और आत्मा से लिखकर हिन्दू जाति के सामने

